

अ ख ण्ड ज्यो ति



सम्पादकीय विभाग
बाल्यवर्षं शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार.

जून १९६३

युग-निर्माण योजना का सक्रिय शुभारम्भ

युग-निर्माण योजना का सक्रिय कार्यक्रम आषाढ़ सुदी १५ (गुरु-पूर्णिमा ता० ६ जुलाई) से विधिवत् आरम्भ हो रहा है। उसकी रूप रेखा इस अङ्क में प्रस्तुत की गई है। पाठक इस अङ्क को दो बार ध्यानपूर्वक पढ़ें और अपने मित्रों को पढ़ावें, अपने तथा उनके अभिमतों से हमें सूचित करें। इस अङ्क के अंत में जो फार्म संलग्न है; उसे भर कर ६ जुलाई को भेजने के लिए सभी पाठकों से अनुरोध है।

इस अङ्क में—

१. हम और तुम (काविता)
२. युग की वह पुकार जिसे पूरा होना ही है?
३. परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु—सद्ज्ञान
४. आत्म-निर्माण के चार आधार
५. शुभारम्भ और श्रीगणेश
६. उच्च स्तर की बढ़ती हुई जिम्मेदारियाँ
७. हमारी नीति और कार्य-पद्धति
८. आहार-विहार सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण
९. स्वास्थ्य संवर्धन के सामूहिक प्रयास
१०. अशिक्षा का अन्धकार दूर किया जाय
११. जन-मानस को धर्म-दीक्षित करने की योजना
१२. सभ्य-समाज की स्वस्थ रचना
१३. इन कुरीतियों को हटाया जाय
१४. सत्साहित्य सृजन—युग की महान आवश्यकता
१५. कला और उसका सदुपयोग
१६. सद्भावना बढ़ाने के लिए यह करें
१७. राजनीति और सच्चरित्रता
१८. युग-निर्माण की आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि
१९. इसी मास आपको यह करना है



मनुष्य तुच्छता को छोड़े और महान बने

भारत माता चाहती है कि उसके पुत्रों की नस-नस में एक नवीन शक्ति का विद्युत सञ्चार हो। लोग साहसी बनें। कायरता से घृणा करें। संकीर्णता और स्वार्थपरता कायरता के चिह्न हैं। आदर्श के मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उन्हें प्रसन्नता पूर्वक शिरोधार्य करना ही साहस और वीरता है। घड़ी-घड़ी मरते रहते हैं पर वीर पुरुष केवल एक ही बार मरते हैं और वह भी शानदार परंपरा स्थापित करते हुए।

मनुष्य तभी तक मनुष्य है जब तक वह पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता रहता है। संसार पर विजय प्राप्त करना गौरव-पूर्ण है पर अपनी दुर्बलताओं ही को जीत लेना सब से बड़ी विजय है। साहित्य, विज्ञान और कला-कौशल में निष्ठा होना अच्छी बात है पर मनुष्य जीवन की समस्याओं वासनाओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझना और उनके नियन्त्रण करने की विधि जानना सब से बड़ी बात है। आज की सब से बड़ी आवश्यकता है कि लोग साहसी बनें। संकीर्णता, स्वार्थपरता और तुच्छता से घृणा करें और महान बनने के लिए साहस पूर्वक कदम बढ़ाते चलें।

—स्वामी विवेकानन्द

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सर्वितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।



सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य

सम्पादकीय विभाग

वर्ष २४, अङ्क ६]

जून, १९६३

प्रत्येक वर्ष शदीषिक मूल्य रु० ६०

हम और तुम



(श्री० जगन्नाथ)

तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

तुम करो बाधा उपस्थित, मैं कहूँ उसको सुप्रवसर
शाप का स्वागत करूँ मैं माँग कर वरदान सुन्दर
मैं उतारूँ भारती तुम को बनाकर यज्ञशाला
तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

मृत्तिका के पात्र लघु में, वस्तिका लघु स्नेह थोड़ा
पर तुम्हारी रात से मैंने किसी विधि नेह थोड़ा
कम न भव सुख के उजाले से मुझे दुख का उजाला
तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

मानता हूँ दो घड़ी में जायगी बुझ दीपमाला
किन्तु निज आलोक को तो जिन्दगी में देख डाला
कम कृपा यह भी नहीं जो स्नेह को तुमने सँभाला
तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

एक सम्झी आयु तक चल कर नहीं जो हाथ आया
वेग से जल कर व्यथित उर मे उसे तत्काल पाया
प्रश्न जो दिन भर टला वह रात ने बिल्कुल न टाला
तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

एक दिन बुझना सभी को, हार बुझने से न होती
जीत जलने में निहित है, जीत धृति बुझकर न खोती
हो तिमिर का बोलबाला, हो जलन का बोलबाला
तुम अन्धेरी रात लाओ, मैं सजाऊँ दीपमाला !

* युग की वह पुकार जिसे पूरा होना ही है *

आज जिस स्थिति में होकर मनुष्य जाति को गुजरना पड़ रहा है वह बाहर से उत्थान जैसी दीखते हुए भी वस्तुतः पतन की है। दिखावा, शोभा, शृङ्गार का आवरण बढ़ रहा है पर भीतर-ही-भीतर सब कुछ खोखला हुआ जा रहा है। दिमाग बड़े हो रहे हैं पर दिल दिन-दिन सिकुड़ते जाते हैं। पढ़-लिखकर लोग होशियार तो खूब हो रहे हैं पर साथ ही अनुदारता स्वार्थपरता, विलास और अहं-कार भी उसी अनुपात से बढ़े हैं। पोशाक, शृङ्गार, स्वादिष्ट भोजन और मनोरंजन की किस्में बढ़ती जाती हैं पर असंयम के कारण स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता चला जा रहा है। दो-तीन पीढ़ी पहले जैसा अच्छा स्वास्थ्य था वह अब देखने को नहीं मिलता, कमजोरी, और अशक्तता हर किसी को किसी-न-किसी रूप में घेरे हुए हैं। डाक्टर-देवताओं की पूजा प्रदक्षिणा करते-करते लोग थक जाते हैं पर स्वास्थ्य लाभ का मनोरथ किती बेचारे को कदाचित ही प्राप्त होता है।

आवांछनीय तत्वों को अभिवृद्धि

धन बढ़ा है पर साथ ही मँहगाई और जरूरतों की असाधारण वृद्धि हुई है। खर्चों के मुकाबिले आमदनी कम रहने से हर आदमी अभावग्रस्त रहता है और खर्चों को तज्ज्ञों अनुभव करता है। पारस्परिक सम्बन्ध खिंचे हुए, संदिग्ध और अविश्वास से भरे हुए हैं। पति-पत्नी, पिता-पुत्र और भाई-भाई के बीच मनोमालिन्य ही भरा रहता है। यार-दोस्तों में से अधिकांश ऐसे होते हैं जिनसे विश्वासघात, अपहरण और तोताचश्मी की ही आशा की जा सकती है। चरित्र और ईमानदारी की मात्रा इतनी तेजी से गिर रही है कि किसी को किसी पर विश्वास नहीं होता। कोई करने भी लगे तो बेचारा धोखा खाता है। पुलिस और जेलों की,

मुकदमे और कचहरियों की कमी नहीं, पर अपराधा मनोवृत्ति दिन दूनो रात चौगुनी बढ़ती जाती है।

जीवन संघर्ष अब इतना कठिन होता जाता है कि सुख शान्ति के साथ जिन्दगी के दिन पूरे कर लेना अब सरल नहीं रहा। हर व्यक्ति अपनी-अपनी समस्याओं में उलझा हुआ है। चिन्ता, भय, विक्षोभ और परेशानी से उसका चित्त अशान्त बना रहता है। शारीरिक व्यथाएँ, मानसिक परेशानियाँ, पारस्परिक, दुर्भाव, न सुलझने वाली उलझनें, आर्थिक तज्ज्ञी, अनीति भरे आक्रमण, छल और विश्वासघात, प्रवंचना, विडम्बना, असफलताएँ और आपत्तियाँ, घात-प्रतिघात और उतार-चढ़ाव का जोर इतना बढ़ गया है कि साधारण रीति से जीवन व्यतीत कर सकना कठिन होता जाता है। संघर्ष इतना प्रबल हो चला है कि जनसाधारण का निरन्तर विक्षुब्ध रहना पड़ता है। इस प्रबल मानसिक दबाव को कितने ही लोग सहन नहीं कर पाते, फलस्वरूप आत्महत्याओं की, पागलों की, निराश हताश और दीन दुखियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही चली जा रही है।

निराशा और चिन्ता का वातावरण

व्यक्तिगत जीवन में हर आदमी को निराशा, तज्ज्ञी और चिन्ता घेरे हुए हैं। सामाजिक जीवन में मनुष्य अपने को चारों ओर भेड़ियों से घिरी हुई स्थिति में फँसा अनुभव करता है। राजनीति इतनी विषम होगई है कि उसमें सत्ताधारी लोगों की मन-मानी के आगे जनहित को ठुकराया ही जाता रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अविश्वास और भय का इतना बाहुल्य है कि अणु-युद्ध में सारी मानव सभ्यता का विनाश एक-दो घण्टे के भीतर-भीतर ही होजाने का खतरा नज्दी तलवार की तरह दुनियाँ के सिर पर लटक रहा है। कोई प्रसन्न नहीं, कहीं,

सन्तोष नहीं, किधर भी शान्ति नहीं। दुर्दशा के चक्र व्यूह में फँसा हुआ मानव प्राणी अपनी मुक्ति का मार्ग खोजता है पर उसे किधर भी आशा की किरणें दिखाई नहीं पड़ती। अन्धकार और निराशा के श्मशान में भटकती हुई मानव अन्तरात्मा खेद और विक्षोभ के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं करती। बाहरी आडम्बर दिन-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं पर भीतर-ही-भीतर सब कुछ खोखला और पोला बनता चला जा रहा है। उस स्थिति में रहते हुए न कोई सन्तुष्ट रहेगा और न शान्त।

अकुलाहट बनाम आन्दोलन

मानव प्राणी अपनी आत्मा के साथ जिन उच्च आकांक्षाओं सम्भावनाओं उद्देश्यों और आवश्यकताओं को लेकर इस पुण्य भूमि में अवतरित होता है उनकी पूर्ति के लायक परिस्थितियाँ यदि न मिलें तो जीवन जीने का वह लाभ मिल नहीं पाता जो उसका मूलभूत लक्ष्य माना गया है। ऐसी विपन्न परिस्थितियों में जब कभी भी विश्व मानव की अन्तरात्मा फँस जाती है तो स्वभावतः उसमें अकुलाहट पैदा होती है। असन्तोष की उग्रता जब सीमा से ऊपर बढ़ने लगती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। अनुपयुक्त स्थिति को बदलकर उपयुक्त परिस्थिति प्राप्त करने की समग्र आकांक्षा किसी-न-किसी क्रान्तिकारी, परिवर्तन प्रस्तुत करने वाले आन्दोलन का रूप धारण करती है।

असन्तुलन को दूर करके सन्तुलन उत्पन्न करने के लिए विश्व इतिहास के पृष्ठों पर समय-समय पर होने वाली क्रान्तियों का उल्लेख मिलता है। यह आवश्यक भी है और स्वभाविक भी। सन्तुलन यदि निरन्तर बिगड़ता रहे तब तो उसका प्रतिफल केवल विनाश ही हो सकता है। किन्तु जिस स्टैटिकता ने यह सुन्दर संसार बनाया है वह समय से पहले इसे नष्ट नहीं देख सकता और न यह चाहता कि यह स्वर्गादिपि गरीयसी धरती नारकीय दुर्गन्ध में सड़ते हुए जीवों की क्रीड़ा भूमि बनकर रहे। इसलिए जब भी विषमता का असन्तुलन बढ़ता है तभी उसकी

प्रतिरोधी प्रतिक्रिया—क्रान्ति भी उठ खड़ी होती है। इसे ही युगपरिवर्तन या अवतरण कहते हैं।

गीता में दिये हुए अपने वचन के अनुसार जब भी धर्म की ग्लानि, और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब धर्म को संस्थापना और दुष्कृतों का विनाश करने के लिए भगवान अवतार धारण करते हैं। स्पष्ट है कि श्रेय भले ही किसी विशेष व्यक्ति को मिले पर वस्तुतः कोई प्रेरणा एवं प्रकाश ही अवतरित होता है, परिवर्तन के लिए प्रस्तुत हुई क्रान्ति अपना प्रचण्ड वेग लेकर अवतरित होती है।

युग परिवर्तन की प्रचण्ड प्रेरणा

ईश्वर निराकार है इसलिए उसका अवतार भी प्रेरणाओं के रूप में ही सम्भव है। जनमानस की अकुलाहट में उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। अवतार का यही वास्तविक स्वरूप है। है। इस प्रेरणा प्रवाह में बहते हुए असंख्य जन-समूह में से कुछ विशेष व्यक्तियों को प्रमुखता मिले, कुछ को वह न मिल पाये यह बाढ़ दुनियाँ की दृष्टि से सम्बन्ध रखती है। अवतार की वस्तुस्थिति का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। युग की पुकार इतनी प्रबलता और प्रचण्डता अपने भीतर धारण किए रहती है कि आँधी में उड़ते हुए पत्तों की तरह अगणित मानवों को उसमें बहुत कुछ करने के लिये विवश होना पड़ता है। राम अकेले ने अपने युग की असुरता को नहीं मिटा दिया था वरन् उसके लिए अगणित मनुष्यों तक ने ही नहीं असंख्य पशु-पक्षियों तक ने, रीछ, बानर, गिद्ध, गिलहरी जैसे छोटे-छोटों ने भी अपने प्राण हथेली पर रखकर बहुत कुछ कर दिखाया था। अन्य सब अवतारों के कथा प्रसङ्ग भी इसी प्रकार के हैं। गाँधी-युग की राजनैतिक क्रान्ति को अभी हम देख चुके हैं, उसकी सफलता का श्रेय किन्हें मिला इसका कोई महत्व नहीं, वस्तुस्थिति यह है कि राजनैतिक दासता के विरुद्ध स्वाधीनता प्राप्त करने की जन भावनाएँ उग्र हो उठीं और उन्होंने सब कुछ उलट-पलट करके रख दिया।

यह परिस्थितियाँ बदलनी ही होंगी

यह प्रत्यक्ष है कि यदि सम्पूर्ण विनाश ही अभीष्ट न हो तो आज की परिस्थितियों का अविलम्ब परिवर्तन अनिवार्यतः आवश्यक है। स्थिति की विषमता को देखते हुए अब इतनी भी गुंजायश नहीं रही कि पचास-चालीस वर्ष भी इसी ढर्रे को और आगे चलने दिया जाय। अब दुनियाँ की चाल बहुत तेज होगई है। चलने का युग बीत गया अब हम लोग दौड़ने के युग में रह रहे हैं। सब कुछ दौड़ता हुआ दीखता है। इस घुड़दौड़ में पतन और विनाश भी उतनी ही तेजी से बढ़ा चला आ रहा है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रतिरोध एवं परिवर्तन यदि कुछ समय और रुका रहे तो समय हाथ से निकल जायगा और हम इतने गहरे गर्त में गिर पड़ेगे कि फिर उठ सकना सम्भव न रहेगा। इस लिए आज की ही घड़ी इसके लिए सबसे श्रेष्ठ मुहूर्त है, जब कि परिवर्तन की प्रक्रिया का शुभारम्भ किया जाय। अब न तो विलम्ब की गुंजायश है और न उपेक्षा-प्रतीक्षा करते हुए समय बिताया जा सकता है। हमें युग-परिवर्तन की क्रान्ति को प्रत्यक्ष रूप देने के लिए आज ही कुछ करने के लिए उठ खड़ा होना होगा।

बाह्य आडम्बरों को बढ़ाने की प्रक्रियाओं ने हमें भीतर-ही-भीतर खोखला बना दिया है। जिन विडम्बनाओं ने हमारी आन्तरिक शान्ति का बुरी तरह अपहरण किया है, अब उन्हें बदल डालना ही उचित है। आन्तरिक उल्लास और आत्म-बल उत्पन्न करने वाली प्रणाली को अपनाने से बाहरी प्रवंचनाएँ यदि कुछ घटानी पड़ती हैं तो इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। शरीर का महत्व घटता हो और आत्मा का गौरव बढ़ता हो तो हमें आत्मा के पक्ष में ही अपना अभिमत व्यक्त करना चाहिए।

नवयुग का आधार

शान्ति का स्रोत सज्जनता में है। नैतिकता एवं मानवता के उच्च आदर्शों को अपना कर जीवन की गति विधियाँ निर्धारित करने से ही मानव-प्राणी सुख शान्ति से जीवन यापन करता हुआ अपने शाश्वत

लक्ष्य की पूर्ति कर सकने में समर्थ होसकता है। इस तथ्य को हमें समझना और हृदयंगम करना ही पड़ेगा। शान्ति का, समृद्धि का इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। जिन शारीरिक, मानसिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उलझनों ने हमें बुरी तरह जकड़ रक्खा है, उसकी गाँठें एक-एक करके नहीं खुलेंगी। इन बँधनों को बाँधने वाली रस्सी को ही पूरी तरह काटना होगा। असुरता की नीति को अपनाकर हमने विपत्तियों को आमन्त्रित किया है। मानवता के आदर्शों को अपना कर हम उनसे छुटकारा भी प्राप्त कर सकते हैं।

जिस आनन्द और उल्लास की दिव्य अनुभूति के लिए यह मानव जीवन मिला है उसी के अनुरूप परिस्थितियाँ भी परमात्मा ने इस संसार में प्रस्तुत कर रखी हैं। इस सहज सुविधा के लाभ से हम अपने उलटे दृष्टिकोण के कारण ही वञ्चित हैं। जीवन नीति बदल लेने से यहाँ की हर परिस्थिति बदल सकती है। उल्टे दृष्टिकोण ने ही यहाँ का वातावरण उलटा कर रक्खा है। सीधी रीति-नीति अपना ली जाय तो सब कुछ सीधा होसकता है। उलटे का सीधा करने का परिवर्तन सफल होने पर युग-परिवर्तन के दृश्य आँखों के सामने प्रस्तुत होने में देर न लगेगी। पशुता का परित्याग कर मानवता को स्वीकार करने से यह संसार नरक न रहकर स्वर्ग बनेगा। चिन्ताओं, व्यथाओं और विक्षोभों की आग में जलने वाला मानव यदि अपनी जीवन नीति में आवश्यक सुधार करले तो यहाँ सब कुछ स्वर्ग के समान ही आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण दिखाई पड़ेगा। ऐसा परिवर्तन प्रस्तुत करने के लिए ही युगनिर्माण योजना की प्रक्रिया प्रस्तुत हुई है इसके पीछे विश्व-मानव की अकुलाहट, समय की पुकार एवं ईश्वरीय प्रेरणा का आवश्यक प्रकाश सन्निहित होने के कारण सफलता तो निश्चित ही है। इसकी असफलता एवं असंभव होने की बात तो किसी को सोचनी भी नहीं चाहिए।

* परिवर्तन का केन्द्र विन्दु-सद्ज्ञान *

—:):—*—:—

परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए मनुष्य के विचारों और कार्यों में परिवर्तन होना आवश्यक है। भीतरी स्थिति का स्वरूप ही बाहर दृष्टिगोचर होता है। नशा पीलेने से जिस प्रकार शरीर की चेष्टाएँ और क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं, उसी प्रकार संकीर्णता की निम्नगामी गतिविधियाँ अपना लेने पर मनुष्य कुविचारों और दुर्भावों को अपनाता है, फलस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, नाना प्रकार की कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ सामने आ खड़ी होती हैं। मनुष्यों का समूह ही समाज है। विभिन्न व्यक्तियों की दुष्प्रवृत्तियाँ मिलकर सामाजिक विपन्नताओं का रूप धारण करती हैं और उसी से सर्वत्र अशान्ति, क्लेश एवं पतन के नारकीय दृश्य उपस्थित होते हैं।

दृष्टिकोण का परिवर्तन

देश समाज और संसार में जो कुछ भी अशुभ हमें दृष्टिगोचर होता है उसका कारण लोगों के व्यक्तिगत दोष ही होते हैं। उन दोषों का उद्भव दूषित दृष्टिकोण के कारण होता है। भोग प्रधान आकांक्षाएँ रखने से मनुष्यों की अतृप्ति बढ़ती जाती है, वे अधिक सुख सामग्री चाहते हैं। श्रम से बचने और मौज-मजा करने की इच्छाएँ जब तीव्र हो उठती हैं तो उचित अनुचित का विचार छोड़ कर लोग कुमार्ग पर चलकर ऐसे कर्म करने लगते हैं जिनका परिणाम उनके स्वयं के लिए ही नहीं, सारे समाज के लिए घातक होता है। इस अदूरदर्शिता पूर्ण प्रक्रिया को अपनाने से ही संसार में सर्वत्र दुख दैन्य का विस्तार हुआ है।

विश्वशान्ति के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना केवल एक ही प्रकार संभव हो सकता है कि मनुष्य भोगप्रधान नीति का परित्याग कर त्यागप्रधान दृष्टिकोण अपनाये। वासना और तृष्णा

की तुच्छता अनुभव करे और तप संयम और आदर्श का उत्कृष्ट जीवन बिताने में गर्व एवं गौरव का आनन्द माने। जब तक वासनाओं और तृष्णाओं के तुच्छ प्रलोभनों में मनुष्य रस लेता रहेगा और उन्हें ही जीवन का लक्ष्य मानता रहेगा तब तक उसके द्वारा उन गति-विधियों का अपना सकना संभव न होगा जिन पर स्वर्गीय वातावरण का विनिर्मित होना संभव होता है।

मानव जीवन का महत्व और लक्ष्य

युग-परिवर्तन के लिए विपन्न परिस्थितियों को आनन्द मंगल के वातावरण में परिवर्तित करने के लिए हम में से प्रत्येक को अपने वास्तविक स्वरूप और जीवन के उद्देश्य को समझना आवश्यक है। चौरासी लाख थोनियों में भ्रमण करने के पश्चात्, लाखों वर्षों पश्चात् मनुष्य शरीर एक बार प्राप्त होता है। यह सुर दुर्लभ अलभ्य अवसर बार-बार कहाँ मिलता है। यह असाधारण सौभाग्य इसलिए नहीं मिला है कि उसे साधारण जीव जन्तुओं की भाँति खाने सोने जैसे तुच्छ कार्यों में ही व्यतीत कर दिया जाय। यदि इस अलभ्य अवसर को शौक-मौज में ही गँवा दिया तो यह अदूर-दर्शिता उस समय बहुत ही दुख देती है जब इन अमूल्य क्षणों को समाप्त कर हमें पुनः चौरासी लाख के चक्र में असंख्य वर्षों तक नारकीय यातनाएँ सहने के लिए विवश होना पड़ता है।

यह मनुष्य देह इसलिए प्राप्त होती है कि आत्मा अपने गौरव और एवं महानता के उपयुक्त गति-विधियाँ अपना कर स्वयं आनन्द लाभ करे और दूसरों की सुख शान्ति को बढ़ाये। वासना और तृष्णा के, लोभ और मोह के, काम और क्रोध के भव-बन्धनों को काट कर जीवन मुक्ति के परमानन्द का रसास्वादन कर सके। यदि संतुलित और सुव्यव-

स्थित जीवन क्रम को अपनाते हुए मनुष्य अपनी गति विधियों को संतुलित बनाले तो उस लक्ष्य की पूर्ति कुछ भी कठिन नहीं है। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए मनुष्य संत की स्थिति प्राप्त कर सकता है, गुजारे के लिए न्याय और श्रमपूर्ण आजीविका, कमाते हुए परमार्थ का पुण्य लाभ हो सकता है। जीवन को ठीक प्रकार जीने की विद्या को यदि सीख लिया जाय तो उस राजमार्ग पर चलते हुए लोक और परलोक दोनों ही प्रकार की सफलताएँ और समृद्धियाँ सामने प्रस्तुत हो सकती हैं।

युग परिवर्तन की पृष्ठ-भूमि

युग-परिवर्तन के लिए मानवीय दृष्टि कोण में यह परिवर्तन होना आवश्यक है जिसका उल्लेख उपरोक्त पंक्तियों में किया गया है। भोगपरक, भौतिकवादी दृष्टिकोण अपना कर मनुष्य स्वार्थी, लोभी, आलसी, उतावला और असंतोषी बनता है। इन दोषों के कारण पाप और पतन भरे कुकर्म ही बन पड़ते हैं। इसलिए जीवन का दर्शन ऊँचा उठाया जाना आवश्यक है। पतित भावनाओं वाले व्यक्ति के लिए लांछना, एवं आत्म-ग्लानि की व्यथा कष्ट दायक नहीं होती, वह निर्लज्ज बना कुकर्म करता रहता है। लोक निन्दा और परलोक का भी उसे भय नहीं होता। ऐसे लोगों से उन श्रेष्ठ कार्यों की आशा नहीं की जा सकती जो विश्वशान्ति के लिए आवश्यक हैं। गंदी प्रकृति के मनुष्य गंदे मुहल्ले में, गंदे घरों में, दुर्गन्धपूर्ण जलवायु में, गंदे साधनों और गंदी परिस्थितियों में प्रसन्नतापूर्वक रह लेते हैं। पर जिसे स्वच्छता प्रिय है वह गरीब होते हुए भी गंदगी स्वीकार न करेगा। इसी प्रकार जिनका दृष्टिकोण निकृष्ट है उन्हें न लोक लज्जा की परवा होती है और न आत्मग्लानि की। वे दुष्टतापूर्ण दुष्कर्म करते रहते हैं और इसी में अपना बड़प्पन मानते हैं। इस स्थिति को परिवर्तन करके कर्तव्य धर्म, आत्म-गौरव और पुण्य, परमार्थ की महत्ता को अनुभव करने की मनोभूमि बनाई जानी चाहिए। जब लोक मानस का स्तर भावनात्मक दृष्टिसे ऊँचा उठेगा तो ही जीवन

में श्रेष्ठता आवेगी और उसी के आधार पर विश्व-शान्ति की मंगलमय परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

अन्तःभूमि के बाह्य परिणाम

सत्कर्म अनायास ही नहीं बन पड़ते। उनके पीछे एक प्रबल दार्शनिक पृष्ठभूमि का होना आवश्यक है। सस्ती नामवरी लूटने के लिए या किसी आवेश में आकर, कभी-कभी घटिया स्तर के लोग भी कुछ बड़े काम कर बैठते हैं पर उसमें स्थिरता नहीं होती। यश कामना की पूर्ति भी हर घड़ी नहीं होती रह सकती न आवेश ही स्थिर रखा जा सकता है। ऐसी दशा में निम्न मनोभूमि के लोग श्रेष्ठ कार्य भी निरन्तर नहीं कर सकते। यदि जीवन में दो-चार बार ऊपरी मन से कुछ अच्छे काम कर दिये जायँ और भीतर-ही-भीतर दुष्प्रवृत्तियाँ काम करती रहें तो जीवन में बुराइयाँ ही अधिक होती रहेंगी। सत्कर्मों का निरन्तर होते रहना, और कठिनाई आने पर भी दृढ़ बने रहना, तभी संभव है जब मनोभूमि को उत्कृष्ट स्तर पर विकसित एवं परिपक्व किया जाय। श्रेष्ठ कार्यों और श्रेष्ठ परिस्थितियों से परिपूर्ण वातावरण इन्हीं परिस्थितियों में बन सकता है।

घृणा, द्वेष, निराशा, चिन्ता विक्षोभ, आवेश में आकर कई बार मनुष्य दुस्साहस पूर्ण कार्य कर डालते हैं। लोभ और मोह के वशीभूत मनुष्य भी कभी-कभी प्राणों की बाजी लगा डालते हैं, पर वे कार्य होते निकृष्ट कोटि के एवं पापपूर्ण ही हैं। प्रतिशोध, हत्या, फौजदारी, आत्महत्या, घर छोड़कर भाग निकलना, अपना सब कुछ लुटा देना, जैसे उद्धत कार्य आवेशग्रस्त लोग करते देखे गये हैं पर उनका लक्ष्य दूसरों को परेशान करना ही होता है। द्वेषवश ही ऐसे कदम उठाये जा सकते हैं और उनका प्रतिफल अपने एवं दूसरों के लिए हानिकारक ही होता है।

संसार में शान्ति और श्रेष्ठता उत्पन्न करने के लिए त्यागपूर्ण, श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करने वाले, साहसपूर्ण बड़े काम करने की आवश्यकता रहती है। उनकी संभावना तभी बनती है जब व्यक्ति का

उद्देश्य उच्च कोटि का और आदर्शवाद की प्रेरणाओं से ओत-प्रोत बन सकें।

उच्च भावनाओं का सतयुग

हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, मोरध्वज, भरत, हनुमान, कर्ण, श्रवणकुमार, शंकराचार्य, गुरु गोविन्द सिंह, लक्ष्मीबाई, एकलव्य, गान्धी, बुद्ध, शिवाजी, राणा प्रताप, सुभाष, भगतसिंह, आदि जिन महापुरुषों के नाम उत्कृष्ट कार्यों के कारण इतिहास के पृष्ठों पर अमर हैं उनसे अपनी मनोभूमि को आदर्शवादी विचार धारा से परिपक्व किया था तभी वे इतने बड़े कदम उठा सके। ऋषि-मुनियों के, वानप्रस्थ और संन्यासियों के जीवन लोक साधना में ही संलग्न होते थे, पर यह सब हो तभी पाता था जब वे प्रयत्नपूर्वक अपना भावनास्तर उच्च आदर्शों के आधार पर ढालने के लिए आध्यात्मिक जीवन दर्शन को गहराई तक हृदयंगम कर लेते थे।

हम चाहते हैं कि संसार में सुख शान्ति रहे। इसके लिए एक ही उपाय है कि लोग दुष्कर्मों को छोड़ कर निरन्तर सत्कर्म करते रहने के अभ्यस्त बनें। यह कदम तभी उठा सकेगा जब जीवन-दर्शन बदले। निकृष्ट आदर्शों का परित्याग कर लोग उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनें। श्रेष्ठ विचार-धाराओं को जन मानस में गहराई तक प्रवेश करा देने से ही यह सब संभव होगा। इसलिए युग-निर्माण का आधार एक ही, केवल एक ही है कि हम अपनी और अपने समीपवर्ती लोगों की भावनाओं का स्तर ऊँचा उठावें। आसुरी सम्पत्तियों से घृणा करें और दैवी सम्पदाएँ बढ़ाने के लिए उत्साहपूर्वक कटिबद्ध हों।

जीवन का दर्शन, उद्देश्य, लक्ष्य बदलने से ही दुष्टता का परिवर्तन श्रेष्ठता के रूप में हो सकेगा। इसलिए उच्च विचार धारा की जो न्यूनता सर्वत्र दिखाई पड़ती है उसकी पूर्ति के लिए प्रबंध करना होगा। दुर्भिक्ष पीड़ितों के प्राण अन्न की व्यवस्था होने से ही बचते हैं। सद्भावनाओं का दुर्भिक्ष पड़ने

से आज सर्वत्र हाहाकारी दृश्य उपस्थित हो रहे हैं, इन्हें बदलना तभी संभव है जब उच्च विचार धाराओं की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक वातावरण बनाया जाय। हमें यही तो करना है। इसी संजीवनी बूटी से मूर्छित समाज की मोह निद्रा जगेगी।

सम्पत्ति ही नहीं सद्बुद्धि भी

सुख सुविधा की साधन सामग्री बढ़ा कर संसार में सुख शान्ति और प्रगति होने की बात सोची जा रही है और उसी के लिए सब कुछ किया जा रहा है। पर साथ ही हमें यह भी सोच लेना चाहिए कि समृद्धि तभी उपयोगी हो सकती है जब उसके साथ-साथ भावना स्तर भी ऊँचा उठता चले। यदि भावनाएँ निकृष्ट स्तर की रहें तो बढ़ी हुई सम्पत्ति उलटी विपत्ति का रूप धारण करती है। दुर्बुद्धि-ग्रस्त मनुष्य अधिक धन पाकर उसका उपयोग अपने दोष-दुर्गुण बढ़ाने में ही करते हैं। जुआ, नशेवाजी, व्यसन, व्यभिचार, आडम्बर, आदि की बढ़ोतरी खाते-पीते मूर्खों में ही होती है। गरीबों को इसकी सुविधा ही नहीं मिलती।

सम्पन्न लोगों का जीवन निर्धनों की अपेक्षा कलुषित होता है, उसके विपरीत प्राचीन काल में ऋषियों ने अपने जीवन उदाहरण प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया था कि गरीबी की जीवन व्यवस्था में भी उत्कृष्ट जीवन जिया जा सकना संभव हो सकता है। यहाँ सम्पन्नता एवं समृद्धि का विरोध नहीं किया जा रहा है, हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि भावना स्तर ऊँचा उठने के साथ-साथ समृद्धि बढ़ेगी तो उसका सदुपयोग होगा और तभी उससे व्यक्ति एवं समाज का सुख शान्ति बढ़ेगी। भावना स्तर की उपेक्षा करके यदि सम्पत्ति पर ही जोर दिया जाता रहा तो दुर्गुणी लोग उस बढ़ोतरी का उपयोग विनाश के लिए ही करेंगे। बन्दर के हाथ में गई हुई तलवार किसी का क्या हित साधन कर सकेगी?

कुछ लोग इधर भी चलें

सन्मार्ग पर चलने वाली प्रेरणा देने वाली विद्या

एवं आदर्श के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने वाला ज्ञान मानव जीवन की सच्ची सम्पत्ति है। इसी को बढ़ाने से शोक सन्तापों से छुटकारा मिल सकना संभव होगा। भौतिक समृद्धियाँ बढ़ाने में बहुत लोग लगे हैं और उसकी दिशा में बहुत कुछ किया भी जा रहा है। कुछ व्यक्ति मानव जीवन की सर्वोपरि सम्पत्ति-सद् भावनाओं को उपजाने और बढ़ाने में भी लगने चाहिए। अन्न का दुर्भिक्ष पड़ जाने पर लोग पत्ते और छालें खाकर जीवित रह लेते हैं पर भावनाओं का दुर्भिक्ष पड़ने पर यहाँ नारकीय व्यथा वेदनाओं के अतिरिक्त और कुछ शेष ही नहीं रह जाता। इस आहार के अभाव में मनुष्य का अन्तःकरण मूर्छित और मृतक बन जाता है। ऐसे लोगों की तुलना प्रेत, पिशाच, असुर, राक्षस एवं हिंस्र पशुओं से ही की जा सकती है। वे नृशंश और जघन्य कृत्य ही कर सकते हैं। भूखों मर जाने में उतनी हानि नहीं, जितनी नीरस और निष्ठुर, मूर्छित और मृतक अन्तःकरण बनने पर होती है।

मानव जाति को विनाश के गर्त में गिरने से बचाने के लिए एक मात्र उपाय यही रह जाता है कि सद् भावनाओं के बढ़ाने के लिए-सत्प्रवृत्तियों के विकसित करने के लिए ठोस और व्यापक आधार पर एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम बनाया जाय और उसे पूरी शक्ति और तत्परता के साथ कार्यान्वित किया जाय। युग-निर्माण योजना इसी प्रकार का प्रयत्न है।

प्रगति-पथ प्रशस्त कैसे हो ?

लोक-मानस में सद् ज्ञान की प्रतिष्ठापना करने का कार्य हमें अपने व्यक्तिगत जीवन में सुधार एवं परिवर्तन करके ही सम्पन्न करना होगा। प्रवचन और लेख इस कार्य में सहायक तो हो सकते हैं पर केवल उन्हीं के आधार पर अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति संभव नहीं। दूसरों पर वास्तविक प्रभाव डालने के लिए हमें अपना अनुकरणीय आदर्श उनके सामने उपस्थित करना होगा। संसार में बुराईयाँ इसलिए

बढ़ रही हैं कि बुरे आदमी अपने बुरे आचरणों द्वारा दूसरों को ठोस शिक्षण देते हैं। उन्हें देखकर यह अनुमान लगा लिया जाता है कि इस कार्य पर इनकी गहरी निष्ठा है। जुआरी जुआ खेलते हुए भारी हानि उठाने को तैयार रहते हैं। नशेवाज अपना स्वास्थ्य होम देते हैं। व्यभिचारी अपने धन और प्रतिष्ठा से हाथ धोते हैं, चोर डाकू राजदंड का त्रास भोगते हैं। इसी प्रकार अन्य बुरे लोग भी भारी खतरे उठा कर भी अपने प्रिय विषय में संलग्न रहते हैं। यही निष्ठा दूसरों पर प्रभाव डालती है और देखा-देखी अन्य अनेक व्यक्ति उनका अनुकरण करने लगते हैं।

सद् विचारों के प्रचारक वैसे उदाहरण अपने जीवन में प्रस्तुत नहीं कर पाते। वे कहते तो बहुत कुछ हैं पर ऐसा कुछ नहीं करते जिससे उनकी निष्ठा की सचाई प्रतीत हो। प्राचीन काल में साधु ब्राह्मण धर्मोपदेश करने से पूर्व अपना जीवन उसी प्रकार का बनाते थे, जिससे सम्पर्क में आने वालों को उनकी निष्ठा की गहराई का पता चल जाय और वे यथा-संभव अनुकरण का प्रयत्न करते हुए अपनी बुराईयों को छोड़ने के लिए अन्तः प्रेरणा विकसित कर सकें। बुराई त्यागने और अच्छाई ग्रहण करने का कठिन कदम कोई तब उठाता है जब वैसे ही दूसरे उदाहरण भी सामने उपस्थित हों और उनसे आवश्यक प्रेरणा प्राप्त हो। गांधी जी, बुद्ध, ईसा के उपदेशों ने संसार में बहुत काम किया है पर उनके प्रवचनों के पीछे उनका उज्ज्वल चरित्र भी प्रकाशवान था।

हमें अपने आपका सुधार करने का कार्यक्रम आरम्भ करते हुए, लोक सेवा की महान प्रक्रिया का आरम्भ करना होगा। युग परिवर्तन का पहला कार्य है—अपना परिवर्तन। हम बदलेंगे तो हमारी दुनियाँ भी बदलेगी। शुभ कार्य अपने घर से आरम्भ होते हैं। समाज सुधारने के लिए, संसार को सुधारने के लिए हमें अपना व्यक्तिगत जीवन सुधारने के लिए अग्रसर होना होगा।



* * आत्म-निर्माण के चार आधार * *



परिवर्तन एवं निर्माण का कार्य अपने आप से आरम्भ होना चाहिए। दृष्टिकोण के हेर-फेर के आधार पर ही जीवन को अन्य सब प्रक्रियाएँ बदलती हैं, इस लिए हमें अपनी आधार नीति में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए तैयार होना चाहिए। आरम्भिक बात यह है कि हमारा समय, श्रम, धन और मस्तिष्क जितना शारीरिक उद्देश्यों की पूर्ति में, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगता है उतना ही आत्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगाने को तत्पर होना चाहिए। उतना न बन पड़े तो उससे आधा तो लगाना ही लगाना चाहिए।

शरीर की नहीं आत्मा की प्रमुखता

हम आत्मा हैं, शरीर नहीं। आत्मा का स्वार्थ ही हमारा सच्चा स्वार्थ है। शरीर की सुविधा और मन की प्रसन्नता का ध्यान तो रखना चाहिए पर इतना नहीं कि आत्मा के हाथ पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ लगे ही नहीं। मनुष्य-जीवन इस लिए प्राप्त हुआ है कि हम आत्मा को हित-साधना करते हुए अपना और दूसरे अनेकों का कल्याण करें। इसलिए जन्म नहीं मिला है कि इन्द्रियों की प्रसन्नता और मोह, लोभ, मद मत्सर की पूर्ति में निरन्तर व्यस्त रहने के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही न पड़े। आजीविका का उपार्जन आवश्यक है पर इतना नहीं कि उसके अतिरिक्त और किसी काम के लिए अवकाश ही न मिले।

आमतौर से हम सब यही भूल करते हैं कि आजीविका उपाजन, शरीरसेवा और घर-गृहस्थी के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। उन कार्यों को करना तो चाहिए पर वे लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होंगे इसी दृष्टि से करना चाहिए। उनके लिए उतना ही समय एवं मनोयोग देना चाहिए जितना कि आवश्यक है। स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ

परमार्थ की बात भी सोचनी चाहिए और उसके लिए भी श्रम, समय एवं मनोयोग का एक अंश नियमित रूप से लगाते ही रहना चाहिए।

जिस प्रकार अपने शरीर परिवार, सम्पत्ति एवं मान बढ़ाई का ध्यान रख कर अपने कार्य किये जाते हैं, अनेक प्रयत्न होते हैं और अनेक योजनाएँ बनाई जाती हैं, उसी प्रकार आत्मकल्याण के लिए उपयुक्त तथ्यों पर भी ध्यान दिया जाना और उसके लिए कुछ न कुछ किया जाना आवश्यक है। स्वार्थ का ही नहीं परमार्थ का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

स्वार्थ ही नहीं परमार्थ भी सोचें

जिस प्रकार सांसारिक कार्यों की चिन्ता रहती है और उनको सफलता असफलता में लाभ-हानि का हर्ष-शोक होता है उसी प्रकार आध्यात्मिक उद्देश्यों और निर्धारित कार्यक्रमों को पूरा करने की जब चिन्ता रहने लगे तब समझना चाहिए कि अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। यही आधारभूत परिवर्तन है। इसके सम्पन्न हो जाने पर उत्कृष्ट जीवन पालन के लिए जितने भी कार्यक्रम बनाये जाते हैं, जितने भी संकल्प किये जाते हैं वे सब पूरे होने लगते हैं। पर यदि मानसिक स्थिति ऐसी न हो, परमार्थ को एक मनोरंजन, प्रयोग, कौतूहल समझ कर किया जा रहा हो तो उससे कोई ठोस परिणाम नहीं निकलता। आवेश में उत्पन्न हुआ जोश-खरोश कुछ ही दिन में पानी के बबूले की तरह बैठ जाता है। समय न मिलने, आर्थिक तंगी या अन्य कोई अड़चन आने का बहाना करके लोग सत्कर्मों के लिए आरम्भ की हुई प्रक्रियाओं का परित्याग कर देते हैं। यदि यही अपनी स्थिति हो तो समझना चाहिए कि अभी परिवर्तन कुछ नहीं हुआ।

दृष्टिकोण में परमार्थ के महत्व को समुचित स्थान

मिल जाना और उसके लिए समय एवं मन के लगने में प्रसन्नता अनुभव होना, निष्ठापूर्वक इस दिशा में प्रयत्नशील रहने की दृढ़ता का जड़ पकड़ लेना, आत्म परिवर्तन का प्रथम चिह्न है।

रुढ़ि को नहीं विवेक को अपनायें

दूसरा चिह्न यह है कि जीवन क्रम अब तक जिस ढर्रे पर चलता चला आया है, उसका अन्ध अनुयायी न रह कर विवेक के आधार पर अपनी गति विधियों का निर्धारण करने का साहस उत्पन्न हो जाय। साहस के बिना कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। जीवन परिवर्तन जैसी प्रक्रिया को कायूर और डरपोक आदमी नहीं कर सकते। ढर्रे में हेरफेर करने की एक तो अपनी हिम्मत नहीं पड़ती फिर कुछ साहस किया भी जाय तो घर के अन्य सदस्य एवं साथी लोग उन्हास करते हैं, मजाक बनाते हैं। कमजोर आदमी झेंप जाते हैं और अपने को अपराधी या मूर्ख बनने जैसी शिक्षक में फँसा हुआ देखकर उठाये हुए कदम को वापिस ले लेते हैं।

सौ मूर्खों के बीच रहते हुए किसी बुद्धिमान व्यक्ति को मूर्खतापूर्ण गतिविधियों का अपना लेना शोभा नहीं देता। स्कूल में सैकड़ों बच्चे पढ़ते हैं, वे तरह-तरह की नादानी करते रहते हैं। यदि अध्यापक उन्हीं की बातों में आ जाय और अपनी रीति-नीति छोड़ कर उन्हीं की रुचि को देखकर चलने लगे तो उस अध्यापक का क्या गौरव रहेगा? अस्पताल में ढेरों मरीज रहते हैं, उनकी सलाह और इच्छा को महत्व देकर यदि डाक्टर अपना कार्यक्रम निर्धारित करे तो इसमें उसकी क्या समझदारी रहेगी? चिर-काल से जो बुरा ढर्रा संसार में चल रहा है लोग तो उसी के अभ्यस्त हैं, अभ्यस्त नशेवाजों को तरह वे भी अपनी मानसिक दासता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। स्वार्थ और दुष्प्रवृत्तियों में, मूर्खताओं और विडम्बनाओं में डूबी हुई दुनियाँ अपनी ओछी बातों को ही बढ़ा-चढ़ाकर महत्व देती है। छोड़ना तो दूर उसका जोरदार समर्थन भी करती है और जो लोग उन दोष दुर्गुणों को हटाना चाहते

हैं उनका विरोध करती है, व्यंग कसती है, मूर्ख बताती है और कई बार तो इसी कारण क्रुद्ध होकर पागलों की तरह ईंट मारने को भी उद्यत हो जाती है। ऐसे ही अज्ञानी लोगों से आज का जन समाज भरा पड़ा है। उनकी रुचि का उल्लंघन करने में कुछ अड़चनें आती हैं और उनका मुकाबिला करना ही शूरवीरों का काम है। आदर्श की रक्षा के लिए विरोध और कष्ट सहने का साहस जब उत्पन्न हो जाय तो समझना चाहिए कि व्यक्ति के अन्तःकरण में आवश्यक परिवर्तन का दूसरा चिह्न भी उत्पन्न हो गया।

सरलता, सादगी और संतोष

परिवर्तन का तीसरा चिह्न है सरलता, सादगी और संतोष। उच्च दृष्टिकोण के व्यक्ति इस तरह की वेष-भूषा और रहन-सहन की पद्धति पसंद नहीं करते जो आडम्बर, अपव्यय और छछोरान से भरी हुई हो। खर्चीली और बनावटी जीवन को सादगी में बदल देने से बहुत-सा समय और धन सहज ही बच जाता है। आर्थिक तंगी अनुभव करने और निरन्तर उसी की पूर्ति में व्यस्त रहने का एक ही कारण है—खर्चों का बहुत बड़ा होना। चौका-चूल्हे और पहनने-ओढ़ने का साधारण खर्च जितना होना चाहिए उससे कहीं अधिक खर्चा लोग आडम्बर और विलासिता की बातों में करते रहते हैं। उसकी पूर्ति में फिर निरन्तर व्यस्त और चिंतित रहना पड़ता है। ऐसे लोग परमार्थ, आत्म-निर्माण, पारिवारिक उत्तरदायित्व, लोक सेवा आदि के लिए समय कहाँ से निकाल पायेंगे? जिसके पास पेट के धन्धों और आडम्बरों से फुसंत नहीं उसे जीवन लक्ष्य की ओर ध्यान देने और उसके लिए कुछ करते रहने की इच्छा ही क्यों होने लगी?

सादगी, संतोष और सरलता का जीवन बिताने से, सांसारिक उन्नति की बड़ी-बड़ी महत्वकांक्षाएँ न रखने से, शारीरिक और मानसिक अवकाश मिलने लगता है। चिंताएँ बहुत हलकी हो जाती हैं, और समस्याएँ सुलझी हुई दीखती हैं। ऐसे ही व्यक्ति

लोकहित और आत्म-कल्याण की दिशा में कुछ कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। जीवन को लौकिक आडम्बरो से भरना हो तो स्वभावतः आत्म-कल्याण एवं परमार्थ के कार्यों के लिए अवकाश न मिलेगा और यदि जीवन-लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ टोस काम करना हो तो सांसारिक दृष्टि से साधारण, काम-बलाऊ और संतोषी दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। जिन्होंने जीवन का सदुपयोग करना निश्चय किया हो उन्हें सादगी की बात भी अपना लेनी चाहिए। श्रेश्ठी को यह तीसरा परिवर्तन भी करना ही होता है। बहुत कमाने की अपेक्षा वह बहुत सत्कर्म करने की बात ही सोचता है।

दया, प्रेम और करुणा

परिवर्तन का चौथा चिन्ह है प्रेम, करुणा, दया, क्षमा और उदारता की अनुभूतियों का अन्तःकरण में बढ़ते चलना। अपने ही सुख की बात सोचना, दूसरों के प्रति निष्ठुरता का व्यवहार करना, दूसरे के दुख-दर्द से द्रवित न होना और पत्थर जैसा हृदय लेकर केवल भोग और संग्रह की ही बात सोचते रहना आसुरी प्रकृति का परिचायक है। मानवता का प्रतीक करुणा ही कही गई है। दूसरों का दर्द जिन्हें अपना दर्द लगता है, और दूसरों को ऊँचा उठाने में जिन्हें आनन्द आता है, उन्हें ही मनुष्य कहना चाहिए। सेवा उदारता और दया जिनके आचरण में छलकते रहते हैं उन्हें ही सज्जन कहा जा सकता है। दुष्टता और निष्ठुरता केवल विविध विधि भोग भोगते रहने और अधिकाधिक संग्रह करते चलने की प्रेरणा देती हैं। इसे बदल कर व्यक्ति यदि त्याग, एवं संयम को अपनावे और परहित में अपनी सामर्थ्य का उपयोग करने लगे तो समझना चाहिए कि निर्माण और परिवर्तन की मंजिल पर प्रगति हो रही है। अन्यथा सिद्धान्तवाद की बातें बढ़-चढ़ कर बनाने वाले और व्यवहार में पूरे कंजूस और निष्ठुर रहने वाले धूर्त तो घर-घर में भरे पड़े हैं। इस धूर्तता का प्रदर्शन तो अपने को सज्जन सिद्ध करने के लिए कोई भी करता रह सकता है।

दान को मानव-जीवन का प्रधान धर्म माना गया है। दया की भावनात्मक प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष स्वरूप दान ही है। यों दान की सत्प्रवृत्ति का आज दुरुपयोग ही अधिक होता है। भोले लोगों को धूर्तों द्वारा दान, धर्म के नाम पर ही टगा जाता है और उससे बुराइयाँ भी बढ़ती हैं, यह दोष दान का नहीं अविवेक का है। विवेकपूर्वक गिरे हुएों को उठाने और पीड़ितों की सहायता करने के लिए कुछ दिया जाता रहे तो इससे आत्मा को संतोष होता है उसका उत्साह और बल बढ़ता है। सत्प्रवृत्तियाँ भी संसार में दान धर्म के आधार पर ही जीवित रहती और पनपती हैं। परिवर्तित दृष्टिकोण का व्यक्ति कितना ही गरीब क्यों न हो संसार को उत्कर्ष की ओर अग्रसर करने के लिए उसके दैनिक जीवन में दान के लिए कुछ न कुछ स्थान रहता ही है। शरीर से, बुद्धि से, धन से, भावना से वह दूसरों के हित साधन में कुछ न कुछ त्याग करता ही रहता है।

तुच्छता त्याग महानता अपनायें

त्याग में एक बहुत बड़ा त्याग है आलस्य, प्रमाद और दीर्घ सूत्रता को छोड़ देना। समय की बर्बादी, मंदगति से काम करना, आलस्य में पड़े रहना, अपनी आत्मा के साथ शत्रुता बरतने के समान है। दया और प्रेम में हितसाधना की भावना रहती है। जो दूसरों के लिए दया भावना रखेगा वह अपने हित और कल्याण की बात भी सोचेगा। जो इस प्रकार सोचने लगा उसे जीवन की बहुमूल्य सम्पत्ति का एक क्षण बर्बाद होता हुआ भी सहन न होगा। उसे आलस्य को छोड़ने और श्रमशीलता अपनाने के लिए तत्पर होना ही होगा।

उदार, त्यागी, दयालु, सेवाभावी और परिश्रमी व्यक्ति ही इस संसार में महापुरुष बन सकेंगे। हम निकृष्ट-जीवन ही जीते रहें या उत्कर्ष की ओर अग्रसर हों? यह फैसला करने के साथ-साथ अपने जीवन परिवर्तन की बात को भी सम्बद्ध कर लेना चाहिए। यदि श्रेष्ठ जीवन की कल्पना मात्र ही करनी हो, मनमोदक ही खानेहों और वस्तुतः कुछ न करना हो

तो जैसा क्रम चलता आ रहा है उसे ही चलने दिया जा सकता है। पर यदि वस्तुतः युग परिवर्तन करना हो तो सर्वप्रथम अपने आपको बदलने का शुभारंभ करना ही चाहिए। इस परिवर्तन के के चार चिन्ह हैं (१) शारीरिक स्वार्थों के स्थान पर आत्मिक स्वार्थ को महत्व देना (२) ढेरों को छोड़कर विवेकपूर्ण गति-विधियाँ अपनाने का साहस संग्रह करना (३) सन्तोष और सादगी को अपनाना

(४) दया, उदारता और सेवा कार्यों में प्रसन्नता अनुभव करना। यह तथ्य यदि व्यवहारिक जीवन में स्थान प्राप्त करने लगें तो समझना चाहिए कि हम बदले और अब संसार को बदल सकने की क्षमता हमें प्राप्त हो चली। इस क्षमता के सम्पादन में हम सब संलग्न हों तो ही अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने की समस्या सुलभेगी।

* * *

....: शुभारम्भ और श्रीगणेश :....

—)≡*(—

युग-निर्माण की प्रक्रिया का आधार आत्म-निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज निर्माण है। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की रचना इसी क्रम से हो सकती है। सुधार का पहला लक्ष्य अपने आपको बनाया जाय। अपने आपका थोड़ा विकसित रूप ही परिवार है। मनुष्य जीवन का परिवार के साथ भी उसी प्रकार सम्बन्ध है जैसे शरीर में उसके विभिन्न अङ्ग जुड़े हुए हैं। कोई भी अंग पीड़ित हो तो सारा शरीर व्यथित होजाता है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों का अस्त-व्यस्त होना भी मनुष्य के लिए बड़ा दुःखदायक सिद्ध होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह प्रयत्न करना आवश्यक है कि परिवार के अन्य सदस्य भी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सुविकसित बनें। सब लोग अपने-अपने परिवारों को सुधारने लगें तो सारा समाज, सारा संसार सहज ही सुधर जायगा।

सेवा कार्यों की महत्ता.

सम्बद्ध समाज में सद्ज्ञान प्रसार का कार्य करते हुए परमार्थ का व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता है। पानी में घुसकर ही तैरना सीखा जाता है, स्कूल में भर्ती होने से ही पढ़ाई होती है। क्रिया से ही अभ्यास होता है। आध्यात्मिक गुणों का अभ्यास तभी होता है जब त्याग उदारता और सेवा-पूर्ण पारमार्थिक कार्यों को करते रहने को अवसर

मिले। समाज सेवा के कार्य-क्रमों को नियमित रूप से अपनाए रहना इसीलिए आवश्यक माना गया है। आध्यात्मिक साधन भी सेवा के अभाव में अधूरे रह जाते हैं। भजन की ही भाँति परमार्थ को भी साधन का अङ्ग माना गया है। इन सब बातों पर विचार करते हुए अपना और संसार का कल्याण करने के लिए सेवा कार्यों में भी संलग्न रहना पड़ता है। सभ्य-समाज की रचना इस लोक-सेवा की प्रवृत्ति पर ही निर्भर रहती है। जिस समाज के लोगों में जितना परमार्थ भाव रहता है उसकी सभ्यता भी उसी अनुपात से बढ़ी-चढ़ी होती है।

व्यक्ति, परिवार और समाज की स्थिति उच्च कोटि की बनाने के लिए कुछ प्रयत्न किया जाय, इसके लिए परिस्थितियों ने विचारशील लोगों की, अन्तरात्मा को विवश किया है। टाल टोल और उपेक्षा का—पीछे कभी देख लेंगे, अभी क्या जल्दी है—यह कहने का समय चला गया। अब और अधिक विलम्ब किया गया तो विभीषिकाएँ सारी मानव सभ्यता के सामने संकट उत्पन्न कर देंगी और इस संसार में रौरव नरक के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा।

आरम्भिक शिलान्यास

कार्य का प्रारम्भ हम अपने आप से करते हैं। इन पंक्तियों का लेखक अपने व्यक्तिगत परिवार में

‘अखण्ड-ज्योति’ के सदस्यों की गणना करता है।
 उने गत २४ वर्षों से जिन लोगों के साथ निरन्तर
 सा ही व्यक्तिगत सम्पर्क रखा है—जिनके सुख-दुख
 उसी प्रकार भाग लिया है जिस प्रकार कोई व्यक्ति
 अपने अंश-वंश के लोगों के साथ लेता है—
 ही लोग “अखण्ड ज्योति” के सदस्य हैं।
 ‘अखण्ड-ज्योति’ साधारण अखबारों की श्रेणी में
 ही आती। श्रेय पथ पर चलने वाले संस्कारवा
 न्तियों को सम्बन्ध-सूत्र में पिरोये रहने की यह
 सूत्र शृङ्खला है। इसके पृष्ठों को हम लोगों की
 त्तरात्मा को एक दूसरे के निकट लाने और एक
 दुसरे की भावनाओं का आदान-प्रदान करने का एक
 शिष्ट माध्यम ही माना जा सकता है। लेखों के
 द्वारा पर नहीं, भावना और आत्मीयता के सुदृढ़
 सम्बन्धों की मजबूत रस्सी में बँधा हुआ यह एक
 सा सङ्गठन है जिसे कौटुम्बिक परजनों से किसी
 प्रकार कम महत्व नहीं दिया जा सकता।
 व्यक्तिगत एकता और आत्मीयता के बंधन हम लोगों
 बाँच इतनी मजबूती से बँधे हुए हैं कि इस समूह
 के परिवार कहने में कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती।
 हम और हमारा परिवार

गायत्री उपासना करने में हमारा मार्ग दर्शन
 प्रमर्श एवं सहयोग लेने वाले व्यक्तियों को हम गायत्री
 रेवार कहते रहे हैं। जो लोग उपासना को उस विधि
 तो नहीं करते, पर जीवन निर्माण के कार्यक्रमों में
 हमत हैं ऐसे लोगों की भी संख्या कम नहीं।
 सासना और जीवन निर्माण विद्या के दोनों ही
 व्यक्तियों से हमारे साथ संबद्ध व्यक्तियों के विशाल
 न समूह को हम ‘अखण्ड ज्योति’ परिवार के नाम
 पुकारते हैं। यह सभी लोग हमें व्यक्तिगत रूप
 अपने शरीर के अङ्गों की तरह प्रिय हैं और
 विश्वास है कि वे लोग भी हमें उसी दृष्टि से देखते
 हैं। पारस्परिक प्रेम भाव और भावनात्मक आदान-
 प्रदान को बनाये रखने में ‘अखण्ड ज्योति’ पत्रिका
 अत्यंत पूर्ण कड़ी का काम करती रहती है।

अपनी मार्गदर्शक सत्ता की प्रेरणा पर अब तक

हम अपने जीवन का कार्यक्रम बनाते और उसकी
 पूर्ति करते चले आ रहे हैं। दस वर्षों के लिए
 युग-निर्माण योजना का जो कार्यक्रम हमें मिला
 है उसका आरंभ भी उसी पद्धति से स्वयं भी
 कर रहे हैं जिसके अनुसार दूसरों को प्रेरणा देनी है।

हमारा व्यक्तिगत निर्माण कार्य-जीवन के आरम्भ
 से ही चलता चला आ रहा है। परम पूज्य पिता जी
 की उद्भट विद्वता और सच्चे ब्राह्मणों जैसी संस्कृति-
 निष्ठा ने जन्म काल से ही प्रभावित किये रखा, पीछे
 १५-१६ वर्ष की आयु में गुरुदेव ने हाथ पकड़ लिया।
 जिस प्रकार गोदी में लेकर कोई माता अपने बच्चे
 को सुरक्षित रखे रहती है, पयपान कराती है, उसी
 प्रकार अज्ञात सत्ता ने अपना दुलार सुधारात्मक प्रवृत्ति
 के रूपमें ही हमें पिलाया है और कुमार्ग पर पैर पड़ने
 से बचाया है। इतने पर भी जन्म जन्मान्तरों के
 संचित कुसंस्कार, जो बीज रूप से अज्ञात चेतना में
 छिपे पड़े हैं उन्हें सुधारने की ओर हमारा ध्यान
 है, अब भी है, तथा आगे आत्मसुधार की प्रक्रिया
 को और भी तीव्र करेंगे, क्योंकि दूसरों को जिस
 काम के लिए कहना है उसको स्वयं भी तो करना ही
 ठहरा। इस दिशा में अपने प्रयत्नों को अब और भी
 तीव्र कर रहे हैं।

दूसरे कदम का कार्यक्षेत्र

दूसरा कदम परिवार निर्माण का है। यों कहने
 को एक छोटा परिवार भी हमारा मौजूद है; पर
 सही बात यह है कि हमने गत चौबीस वर्षों से अपने
 विचार परिवार को ही अपना वास्तविक परिवार
 माना है। कभी यह कल्पना ही नहीं आती कि हमारा
 कुटुम्ब घियामंडी के छोटे मकान में रहने वाले लोगों
 तक ही सीमित है। “अखण्ड ज्योति परिवार” के
 तीस हजार व्यक्ति सदा हमें अपने सच्चे स्वजन
 सम्बन्धी दीखते रहे हैं। उनके सम्बन्ध में हमारी
 चिंता, आकांक्षा और जिम्मेदारी उतनी ही रहती है
 जितनी किसी दूसरे को अपने निजी परिवार की
 रहती है। यों सारा समाज और सारा संसार ही
 ही अपना है, पर जिनके साथ प्रेम और कर्तव्य के

आवश्यक बंधन बंधे होते हैं उनके लिए कुछ विशेष सोचना और करना पड़ता है। अपने इस तीस हजार व्यक्तियों के कुटुम्ब के प्रति हमें सदा ऐसी ही अनुभूति होती रहती है।

युग निर्माण योजना को कार्यान्वित करते हुए हमें आत्म निर्माण के अतिरिक्त परिवार निर्माण का कार्य भी करना है। योजना का प्रारम्भ यहीं से हो रहा है। आगे चल कर उसका व्यापक विस्तार होगा पर श्री गणेश का क्षेत्र तो वही रह सकता है जो हमारे अत्यन्त निकटवर्ती कुटुम्बी परिजनों का है। जिन पर हमारा कुछ अधिकार है उन्हीं से कुछ करने के लिए बलपूर्वक कहा भी जा सकता है। अपने अधिकार क्षेत्र में ही कुछ कर सकना हमारे लिए सम्भव भी था, वही कर भी रहे हैं। परिवार निर्माण का काम "अखण्ड ज्योति" के सदस्यों से—अपने विचार परिवार से आरम्भ करते हुए हमें पूरा और पक्का विश्वास है कि इसे ध्यानपूर्वक सुना और समझा जायगा। इतना ही नहीं वरन् प्रत्येक परिजन उससे जितना बन पड़ेगा उतना करेंगे भी।

शत-सूत्री योजना और उसका कर्मक्षेत्र

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमें क्या करना चाहिए, क्या सोचना चाहिए, इसकी एक छोटी रूपरेखा अगले पृष्ठों पर उपस्थित है। इसमें से जो कर सकना सम्भव हो उसे आगामी 'गुरु

पूर्णिमा'—६ जुलाई से-आरम्भ कर देना चाहिए। युग निर्माण योजना को कार्यान्वित करने का आदेश हमें उसी तिथि को मिला है। इसलिए इसके प्रारम्भ की जन्म तिथि सदा यही मनाई जाया करेगी। इस वर्ष इसका जितना अंश जिन्हें आरम्भ करना हो उसी दिन से उसका श्रीगणेश करें।

योजना में जो कार्यक्रम हैं वे भारतीय संस्कृति को, हिन्दू परम्परा को ध्यान में रखते हुए बनाये गये हैं। क्योंकि हम स्वयं इसी श्रेणी में आते हैं और हमारे वर्तमान परिजन भी इसी वर्ग के हैं। हर व्यक्ति अपने क्षेत्र और वर्ग को देखकर ही कुछ करने की व्यवस्था बना सकता है। चूँकि योजना विश्व व्यापी है, सभी वर्गों सभी जातियों, सभी धर्मों, सभी देशों और सभी धर्मों के लिए है इसलिए उसका मूल आधार एक रहते हुए भी स्थिति के अनुरूप इसके कार्यक्रम बदलते रहेंगे। जैसे समाज सुधार के लिए दहेज, मृत्युभोज आदि जिन बुराइयों का वर्णन है वे हिन्दू समाज की हैं, ईसाई वर्ग के लोग उन्हें छोड़ दें और उनके समाज में जो कुरीतियाँ प्रचलित हों उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। गायत्री मन्त्र की जो महिमा हिन्दू धर्म में है मुसलमानों में वही 'कलमा शरीफ' की है, वे उसी मन्त्रको भावना-पूर्वक जप सकते हैं। इसी प्रकार अन्य बातों में भी देश काल पात्र एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हेर फेर करें।

* उच्च स्तर की बढ़ती जिम्मेदारियाँ *

किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि अब तक गायत्री उपासना की शिक्षा पर जोर देते रहने के बाद अब उसकी दिशा बदली जा रही है, या कोई भिन्न प्रकार का कार्यक्रम दिया जा रहा है। हमारे जीवन का लक्ष्य और कार्यक्रम एक था और वह सदा एक ही दिशा में गतिशील रहेगा।

आत्मा के कल्याण के लिए जीवन को साधना-

मय बनाने की आवश्यकता आज भी उतनी ही है जितनी सृष्टि के आरम्भ में थी। साधना के दो अंग हैं (१) उपासना (२) भावना। उपासना का तात्पर्य पूजा की प्रक्रिया, विधि व्यवस्था से है। गायत्री उपासना का कर्म-काण्ड इसी श्रेणी में आता है। जप, उपवास, अस्वाद व्रत, अनुष्ठान, पुरश्चरण, अग्निहोत्र, आदि कियाएँ उपासना कही जा सकती

। यह हैं तो महत्वपूर्ण पर सर्वाङ्गपूर्ण नहीं हैं।
 वना के समन्वय से ही यह परिपूर्ण बनती हैं।
 भावनाएँ रखते हुए जो उपासना की जाती है
 तुरन्त फलित होती है। स्वल्प प्रयत्न, श्रम और
 तप में ही उसका आशाजनक सत्परिणाम प्राप्त
 जाता है। किन्तु यदि भावनाओं के महत्व की उपेक्षा
 करते हुए, जड़ मशीन की तरह जप आदि की कोई
 या करते रहा जाय तो उससे वह प्रतिफल कदापि
 नहीं हो सकता जो होना चाहिए।

कर्मकाण्ड और सद्भाव का समन्वय

यज्ञ का पूरा लाभ उसे मिलता है जो आहुतियाँ
 करते हुए यज्ञीय भावना भी अन्तःकरण में प्रज्ज्व-
 त रखे। जिस प्रकार अपने उपयोगी एवं आव-
 क घृत आदि पदार्थ स्वयं न खाकर उन्हें प्राणि-
 म के पोषण के लिए हवन करते हैं, उसी प्रकार
 शक्तियों को भी व्यक्तिगत लाभ की उपेक्षा
 के समाज हित में लगाने की शिक्षा हवन से होती
 है। यह भावना यदि यज्ञीय कर्मकाण्ड के साथ जागृत
 सके तो आत्मा की निमलता बढ़ती है और वह
 नहोत्री उस लाभ को प्राप्त कर लेता है जो
 ऋषियों ने लिखा है। यज्ञ का कर्मकाण्ड और
 यज्ञ भावनाओं द्वारा आत्मशोधन इन दोनों के
 मेलन से ही परिपूर्ण यज्ञ होता है। अन्यथा
 ना विहीन यज्ञ एक वायु साधक कर्मकाण्ड मात्र
 जावेगा, और उस प्रक्रिया का वह लाभ न हो
 गा जो सच्चे यज्ञकता को होना ही चाहिए।

यही बात अन्य समस्त कर्मकाण्डों पर लागू
 है। उपासना को शरीर और भावना को प्राण
 कहा है। प्राण विहीन शरीर का जो मूल्य है
 भावना विहीन उपासना का है। तीथयात्रा,
 उपवास, ध्यान, जप, तप, दान, पुण्य इन सबके
 परिणामों का होना न होना कर्ता की भावनाओं
 ने भरे रहता है। गायत्री उपासना के सम्बन्ध
 में यही तथ्य लागू होता है। कितने ही व्यक्ति
 बहुत करते हैं पर उनका आन्तरिक स्तर निष्कृष्ट
 से जरा भी ऊँचा नहीं होता। ऐसी दशा में

चिरकालीन उपासना के पश्चात् भी उन्हें निराशा
 ही हाथ लगती है। तृष्णाओं और वासनाओं की
 पूर्ति के साधन के रूप में ही जिनने इष्ट देव की पूजा
 शुरू की हो, उन्हें कोई ऊँचा वरदान प्राप्त होने की
 आशा नहीं करनी चाहिए।

मार्ग एक ही तो है

गायत्री उपासना में जीवन का अधिकांश लगा
 देने के उपरान्त हमने यही निष्कर्ष निकाला है कि
 आत्मोन्नति के लिए उपासना-कृत्यों की जितनी
 आवश्यकता है उतनी ही भावनाओं की उत्कृष्टता
 भी अपेक्षित है। जिनने इस तथ्य को हृदयंगम किया
 है वे सभी साधक उन्नत स्तर पर पहुँच चुके और उनकी
 आत्मिक प्रगति आशा जनक सफलता प्रस्तुत कर
 रही है। थोड़े समय में भी वे सर्वाङ्गपूर्ण उपासना
 करके बहुत कुछ प्राप्त कर चुके और जो शेष है उसे
 इसी जीवन में प्राप्त कर लेंगे ऐसा हमारे सम्पर्क में
 आने वाले अनेकों साधकों की स्थिति देखकर हमने
 निश्चित विश्वास कर लिया है। किन्तु जो जीवन के
 नैतिक स्तर को उठाने के लिए तैयार नहीं, उसे गंदा
 ही रखना चाहते हैं पर भौतिक और आत्मिक लाभों
 की बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये रहते हैं उन्हें चिर-
 प्रयत्न करने पर भी हम खाली हाथ ही देखते हैं।
 ऐसी दशा में यह आवश्यक ही हो जाता है कि
 आध्यात्मिक मार्ग में चलते हुए सफलता और
 असफलता प्राप्त करने के रहस्य को हम उपासना
 क्षेत्र के हर जिज्ञासु के सामने भली प्रकार खुले शब्दों
 में प्रकट कर दें।

उपासना से चरित्र शुद्धि की प्रेरणा तो मिलती
 है, अंकुर तो उगता है पर साथ ही यह भी आवश्यक
 है कि उस अंकुर को ठीक प्रकार खाद पानी दिया
 जाय। यदि उसका संरक्षण, पोषण न हुआ तो वह
 अंकुर फलने फूलने की स्थिति तक न पहुँचेगा। उपा-
 सना के द्वारा सन्मार्ग पर चलने की जो प्रेरणा मिलती
 है उसे सद् भावनाओं और सत्कर्मों को जीवन में
 क्रियात्मक रूप देकर सींचा जाय। उपासना क्षेत्र में
 उगा हुआ भावना का पौधा यदि सत्कर्मों द्वारा ठीक

तरह पोषण किया जाता रहे तो वह एक दिन कल्प-वृक्ष जैसे सुखद सुरम्य प्रतिफल प्रस्तुत करता है।

आप भी इसी क्रम को अपनावें

हमने अपने सारे जीवन यही किया है। जहाँ जप, तप, ध्यान, उपासना में प्रति दिन छै-छै घंटे नियमित रूप से लगाये हैं वहाँ जीवन के हर पहलू को शुद्ध और सुव्यवस्थित रखने के लिए पूरा-पूरा ध्यान दिया है। साथ ही लोक सेवा, समाज हित के लिए जप जितना हो, वरन् उससे भी अधिक समय लगाते रहने का प्रयत्न किया है। जीवन के आरम्भ में ही हमें यह सिखा दिया गया था कि जीवन शोधन और लोक सेवा की उपेक्षा करने वाला कोई व्यक्ति उच्च आध्यात्मिक स्तर तक नहीं पहुँच सकता। इसलिए एक सुनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार हम अपने जीवन की गति विधि निश्चित किये रहे हैं और सही मार्ग पर चलते रह कर ही प्रगति के एक स्तर तक पहुँच सकने में समर्थ हुए हैं। यही परम्परा अनादि काल में सभी श्रेय पथ के पथिकों की रही है। उन्होंने उपासनात्मक कर्मकाण्ड के अतिरिक्त जीवन शोधन और लोक-सेवा को भी समान रूप से महत्व दिया है और इन तीनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं का है।

यह क्रम हम अपने साथी, सहचर आत्म कल्याण पथ के पथिकों को बताते रहे हैं। पर खेद है कि लोग एकाङ्गी प्रयत्न करके ही संतुष्ट हो जाना चाहते हैं। जप, अनुष्ठान उन्हें सरल लगता है और उतने भर से ही वे बड़ी-बड़ी कामनाएँ पूर्ण करने वाली ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होने की कल्पना करते रहते हैं। प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तो कुड़-कुड़ाते हैं। पर इससे क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है। तथ्य तो तथ्य ही रहते हैं ये व्यक्ति की इच्छा करने मात्र से तो बदलते नहीं। सेवा कार्यों से सर्वथा विमुख रहा जाय और दुर्गुणों के छोड़ने का नाम 'भी न लिया जाय' इतने पर भी मंत्र-जप उन्हें जादू की छड़ी की तरह सब कुछ प्रदान कर दिया करेगा ऐसा सोचना उचित नहीं।

उच्च स्तरीय साधना की ऊँची जिम्मेदारी

हमें इन दस वर्षों में अपने स्वजनों को गायत्री उपासना के उच्च स्तर की ओर प्रेरित करना है। पंच कोशी उपासना का कार्य क्रम इसी दृष्टि से है। अन्न मय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों के अनावरण के लिए जो साधना विधि बनाई जा रही है उसमें जीवन शोधन का पर्याप्त अंश है। युग-निर्माण कार्यक्रम लोक-सेवा वाले अंश की पूर्ति करता है। इस प्रकार यह त्रिविधि कार्यक्रम एक सर्वाङ्ग पूर्ण आध्यात्मिक कार्यक्रम की पूर्ति कर देता है।

पाठशाला में आरंभिक बालकों को केवल एक बात सिखाई जाती है—अक्षर ज्ञान। कुछ दिन बाद गिनती पहाड़े गणित का शिक्षण चल पड़ता है। अक्षर लेखन से गणित की प्रक्रिया भिन्न प्रकार की है, पर वह भिन्नता भी शिक्षा का एक आवश्यक अंग होने से छात्र को अपनानी ही पड़ती है। उसकी यह शिकायत उपहासास्पद मानी जाती है कि पहले हमें केवल स्वर व्यंजनों के अक्षर ज्ञान की ही बात कही गई थी। उसे ही चलने देना चाहिए था। गणित का झंझट और खड़ा किया गया। यह दुहरी मुसाबत क्यों लादी गई?

कुछ दिन बाद रेखा-गणित का एक और कार्यक्रम छात्र को सीखना पड़ता है। तीसरी बात जब चले तब छात्र अध्यापक को दोष दे सकता है कि अध्यापक का रास्ता ठीक नहीं, यह तो रोज नई बात करता है, तरह-तरह के परिवर्तन करता है। अध्यापक विवश है। छात्र को सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा के लिए उसे कई विषयों को सिखाना ही पड़ता है। वह बेचारा सर्वथा विवश है। छात्रों की शिकायत को उचित बता कर यदि अक्षर ज्ञान का एक ही कार्यक्रम रखे तो वह अपने कर्तव्य से च्युत ही होगा और छात्र भी आवश्यक लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जावेंगे।

सत्य की पूर्णता का पुण्य-पथ

आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाते हुए अपने जन, सहयोगियों को जीवन लक्ष्य की पूर्णता की र प्रेरित करते चलने के लिए हम प्रयत्नशील हैं। के लिए वही कुछ तो दूसरों से कहना होगा जो करना पड़ा है। गायत्री मंत्र का जप करते रहने व से अभीष्ट उद्देश पूर्ण हो सका होता तो हमें तो खींचतान भरी जिन्दगी न बितानी पड़ती। वेधा से दिन काटना किसे बुरा लगता है? दूसरे 1-महंतों की तरह हम भी आराम के दिन गुजार लेते थे, थोड़ा जप, ध्यान कर लेना मामूली बात। कठिनाई संघर्ष में आती है। गीता में अर्जुन को भगवान ने संघर्ष में ही लगाया था। अधना को भी समर ही कहते हैं। इसमें हर साधक 1 तीन मोर्चों पर लड़ना पड़ता है। उपासना के साथ-साथ जीवन शोधन और लोक-सेवा के लिए से निरन्तर कर्मरत रहना पड़ता है। आरम्भ में बल लाठी धुमाना सिखाया जा सकता है, पर फौजी 'निक को आखिर बन्दूक और संगीन चलाना भी जानना ही पड़ेगा। लाठी धुमाने मात्र की शिक्षा साथ उसकी पूर्णता सम्पन्न नहीं हो सकती।

हमारा कार्यक्रम एक ही था, एक ही है और क ही रहेगा। पशु को मनुष्य और मनुष्य को वता बनने का-नर से नारायण और पुरुष से रूषोत्तम बनने का मार्ग ही अध्यात्म है। हम उसी

पर चलेंगे और उसी पर चलने की अपने साथी सहचरों को प्रेरणा देंगे। युग-निर्माण-योजना के कार्यक्रम में नवीन कुछ भी नहीं, और न कोई मार्ग-परिवर्तन जैसी बात है। स्तर बढ़ने के साथ-साथ जिम्मेदारी बढ़ने भर की बात है। जप करना सिखा कर आरम्भ किया गया था, पर उसका अंत इतने संकुचित क्षेत्र में नहीं हो सकता।

वस्तु स्थिति समझिए और कटिबद्ध हूजिए

जिन्होंने गायत्री को जादू-मंत्र से कुछ अधिक समझा है उन अध्यात्म-वादियों को इसी की आशा करनी चाहिए थी जो उनके सामने रखा जा रहा है। शुद्ध आत्माएँ ही युग-निर्माण का कार्य अपने कंधों पर ले सकती हैं। यह कार्य वाचालों और चातुर्य-पारंगत लोगों का नहीं वरन् निष्ठावानों का है। जिनने अपनी निष्ठा को जप, तप के द्वारा परिपक्व किया है उनका कर्तव्य है कि इस अशान्त संसार में शान्ति स्थापना के लिए-बढ़ते हुए अधर्म को रोकने और धर्म की शक्तियों को बढ़ाने के लिए-कुछ काम करें। उसकी अपेक्षा करने से वे अपने कर्तव्य का ही तिरस्कार करेंगे। अपने बढ़ते हुए स्तर के अनुरूप हर साधक को युग-निर्माण के उत्तर-दायित्वों को साहस और उत्साहपूर्वक अपने कंधों पर उठाना चाहिए। झंझट से बचने के लिए, अर्जुन की तरह लड़ाई से दूर रहने की बात कह कर अपने मोह का भोंड़ा प्रदर्शन करना हम में से किसी के लिए भी उचित नहीं।

* हमारी नीति और क्रिया-पद्धति *

विश्व शान्ति का एक-मात्र उपाय है सत्य और धर्म का अवलम्बन। आत्म-कल्याण भी इसी मार्ग पर चलने से होता है। प्रत्येक निष्ठावान व्यक्ति को प्रचलित अंध-परम्पराओं में से केवल सत्य और धर्म के चुनने और अपनाने का साहस करना चाहिए। आदर्शवाद कहने और सुनने में अच्छा लगता है पर

कठिनाई उसके व्यवहारिक रूप को क्रियान्वित करते समय आती है। इस कठिनाई से लड़ने के लिए ही युग-निर्माण योजना को एक आध्यात्मिक प्रशिक्षण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विशुद्ध अध्यात्म साधन

जो योजनाएँ हम अपने स्वजन सहचरों के

सम्मुख अगले पृष्ठों पर प्रस्तुत कर रहे हैं उन्हें विशुद्ध रूप से एक आध्यात्मिक साधना-क्रम माना जाना चाहिए, क्योंकि उन्हें व्यवहार में लाने पर सत्य और धर्म का ही अवलम्बन करना पड़ेगा, विवेक और कर्तव्य को ही प्रमुखता देनी पड़ेगी। स्वार्थ और लोभ का, वासना और तृष्णा का दमन किये बिना इनमें से एक भी कार्य नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत योजना में से किसी का भी, किसी भी अंश में आचरण किया जायगा तो उससे जीवन शोधन की प्रक्रिया स्पष्ट ही पूर्ण होगी और लोक सेवा तो प्रत्यक्ष ही बन पड़ेगी। इस प्रकार जीवन-विकास का लक्ष्य दिन-दिन प्रशस्त होता जायगा। सेवा-धर्म के अपनाये बिना किसी का शरीर, किसी का जीवन, किसी का धन, किसी का ज्ञान सार्थक नहीं हो सकता। अखाड़े में जाये बिना कौन पहलवान बना है? पानी में घुसे बिना किसे तैरना आया है? इसी प्रकार सेवा कार्य में संलग्न होकर त्याग और करुणा की वृत्तियों को विकसित किये बिना किसी का भी अन्तःकरण न निर्मल हो सका है, और न आगे होगा।

सेवा का सूक्ष्म दर्शन

सेवा कार्यो द्वारा आत्मोन्नति करने का मार्ग सनातन शाश्वत और सर्व सुलभ है। उपासना का संमिश्रण हो जाने से तो सेवा सोने में सुगंधि का काम करती है। इस मार्ग में जितना अपना लाभ है उतना ही दूसरों का भी लाभ है। जिनकी सेवा की गई है उनका हित साधन होगा ही, उनके सुखों में वृद्धि होगी ही। इस प्रकार उससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों का लाभ है। जहाँ अपना जीवन धन्य बनता है वहाँ दूसरों के उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होने में जनता जनार्दन की, विश्व वसुधा की सुख शान्ति में वृद्धि होती है। जिन विपत्तियों में होकर आज समस्त संसार गुजर रहा है उन्हें हल करने का मार्ग अपनाते हुए यदि हम आत्म-कल्याण का लक्ष्य भी पूरा करते हैं तो यह निस्संदेह बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता और दूर दर्शिता की ही बात कही जायगी।

विचार परिवर्तन ही जीवन परिवर्तन का मूल है। जिस दिशा में भी परिवर्तन प्रस्तुत करना है उससे सम्बन्धित मान्यताओं और विचार धाराओं में परिवर्तन करना होता है, साथ ही यह भी प्रयत्न किया जाता है कि परिवर्तित विचार धाराओं के अनुरूप कार्य पद्धति में ही हेर-फेर करने का साहस लोग करने लगे। यही एक मात्र प्रक्रिया युग परिवर्तन की कार्य पद्धति है। हमें यही सेवा-क्रम अपनाना है। विपत्तिग्रस्तों को उनकी तात्कालिक आवश्यकता के अनुरूप कुछ आर्थिक या शारीरिक सहायता पहुँचाना भी आवश्यक होता है, पर ऐसे अवसर सदा नहीं आते। ऐसे विपत्तिग्रस्त, जिनकी सहायता दूसरों को करनी ही करनी पड़े कम ही होते हैं। धन अपहरण करने के लिए चोर डाकुओं की भाँति बहानेबाज बहुरूपिये भी बहुत फिरते हैं। वे कभी पीड़ित का रूप बना लेते हैं, कभी धर्म-ध्वजी का। वस्तुतः विपत्ति-ग्रस्तों को उनकी स्थिति संभलने तक सहायता करना उचित है, पर भावुकता-वश ऐसे धूर्तों के जाल में भी नहीं फँसना चाहिए, जो वस्तुतः सहायता के अधिकारी नहीं होते हैं। जिन्हें मुफ्त का धन प्राप्त करने का चस्का पड़ जाता है, वे आलसी और निकम्मे ही नहीं बनते वरन् बहानेबाजी, प्रवचना एवं अनेक नैतिक बुराइयाँ भी बढ़ाने लगते हैं। इसलिए सेवा के मार्ग में इस खतरे से भी हम सबको पूरी सतर्कता और सावधानी बरतनी चाहिए, अन्यथा पुण्यफल देने वाली होने की अपेक्षा वह सेवा पाप और दुष्टता का पोषण करने लगेगी और सर्प को दूध पिलाने पर विष बढ़ने के समान संसार में विपत्ति ही उत्पन्न करेगी।

सद् विचारों की प्रचण्ड शक्ति

सद् विचारों की प्रेरणा और सत्कर्मों के लिए प्रोत्साहन यही इस विश्व का सबसे बड़ा पुण्यकार्य है। इसे ही ब्रह्म-दान या ज्ञान-यज्ञ कहते हैं। युग-निर्माण का आयोजन करते हुए हमें ज्ञान-यज्ञ के लिए बड़े से बड़ा त्याग और प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञान में वह शक्ति मौजूद है कि उसको यदि भावना स्तर तक पहुँचा कर प्रखर एवं ओजस्वी बना दिया जाय तो निस्संदेह व्यक्ति उस प्रकार के कार्य करने लगेगा, और जहाँ सत्कर्म होने लगेंगे वहाँ स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न होने में कोई कठिनाई या कमी न रहेगी।

हम यही प्रयत्न करने चले हैं। इन पक्तियों के माध्यम से, तथा अन्तरात्मा की प्रचंड आकांक्षा द्वारा 'अखण्ड-ज्योति परिवार' के प्रत्येक सदस्य के मन में यह भावनाएँ उत्पन्न हो रही हैं कि उसे उपासना, जीवन शोधन और सेवा कार्यों का भी उसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए जैसे कि रोटी कमाने, वासनाओं को तृप्त करने तथा शरीर का पोषण करने का ध्यान रखा जाता है। यदि इस प्रयत्न में हमें सफलता मिलती है तो निश्चय ही तीस हजार व्यक्तियों का आज का 'अखण्ड-ज्योति परिवार' कल लाखों और परसों करोड़ों व्यक्तियों के जीवन में सत्प्रवृत्तियों का जागरण उत्पन्न करके स्वर्गीय परिस्थितियों का निर्माण करेगा।

सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि

हमें ऐसे सेवा कार्यों का सृजन करना चाहिए जिनके सम्पर्क में आने वाले प्रभावित हुए बिना न रहें। अन्न-वस्त्र देने से किसी की भूख बुझ सकती है, सामयिक आवश्यकता पूरी हो सकती है, पर उसे वह मार्ग नहीं मिल सकता जिससे उसे आजीवन अपने अभावों को अपने बलबूते पर दूर करने का उपाय मिल जाय। जो ज्ञान इस आवश्यकता को पूर्ण कर सकता हो वह हजारों मन अन्न और ढेरों वस्त्र देने से अधिक महत्वपूर्ण है। हमें महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित करनी है, इसलिए महत्वपूर्ण सेवा कार्यों का भी अपनाया जाना जरूरी है।

जिन सेवा कार्यों को हम पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं वे सभी ऐसे हैं जिनसे व्यक्ति की तात्कालिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने में ही सुविधा न मिलेगी वरन् जीवन की समस्याओं के सुलझाने

में भी स्थायी रूप से योगदान मिलेगा। साथ ही एक विशेषता यह भी है कि इसमें धन की नहीं भावना की ही प्रधानता रहेगी। इन कार्यों को गरीब और स्वल्प साधन सम्पन्न व्यक्ति भी कर सकते हैं।

अपनी कार्यशैली यह होनी चाहिए कि योजना की प्रस्तुत विचार धारा को जन-मानस में प्रवेश कराने के लिए हम सब व्यापक रूप से प्रयत्न करें। युग-निर्माण की विचार धारा अत्यन्त ही प्रौढ़ और प्रखर चेतना युक्त, विश्व-समस्याओं को हल करने की क्षमता एवं संभावना से परिपूर्ण है। इसे जन-मन में प्रवेश कराने के लिए हमारा विशाल परिवार यदि जुट पड़े तो चक्र वृद्धि व्याज के क्रम से लाखों-करोड़ों अन्तःकरणों में यह प्रेरणा हिलोरें मारने लगेगी।

प्रभाव क्षेत्र में प्रेरणा

अच्छा तो यह है कि हम लोग अधिक से अधिक जन सम्पर्क बनावें और प्रस्तुत विचार धारा को अपनी बुद्धि, प्रतिभा और सामयिक परिस्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार से उन सबको समझावें जो अपने सम्पर्क में किसी भी प्रकार आया करते हैं। अपने स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी, मित्र, स्वजन, सम्बन्धी, परिचित एवं किसी भी रूप में संबद्ध होने वाले व्यक्तियों को इस विचार धारा का परिचय मिले और वे उस प्रेरणा से प्रेरित होकर कुछ करने के लिए कटिबद्ध हो जायें ऐसा प्रयास असंभव नहीं पूर्णतया संभव है। सच्ची श्रद्धा, सच्ची लगन और सच्ची चेष्टा होने पर सचाई से भरे विचार निस्संदेह दूसरों पर जादू की तरह असर कर सकते हैं।

पिछले २४ वर्षों में अपने तुच्छ प्रयत्नों से करीब २० लाख व्यक्तियों को निष्ठा पूर्वक गायत्री उपासना में संलग्न किया जा चुका है। तब की अपेक्षा अब अपने साथियों की संख्या और निष्ठा कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी है। युग-निर्माण की जिस योजना को लेकर कार्यारंभ किया जा रहा है वह आज उपहासास्पद

भले ही लगे पर कल या परसों उसका अत्यन्त विशाल रूप सामने आने वाला है। उसकी सफलता के सम्बन्ध में सन्देह करने की कोई बात नहीं, क्योंकि इसके पीछे युग की पुकार और दैवी प्रेरणा का प्रचंड बल मौजूद है। यह बल जिस प्रक्रिया के भी पीछे होगा उसकी सफलता सुनिश्चित ही रहती है।

‘अखण्ड-ज्योति’ इस प्रवृत्ति का मूल उद्गम होने से उसको अधिकाधिक लोगों में पढ़ाया या सुनाया जाना आवश्यक है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक सर्व प्रथम कार्य यह करे कि अपनी पत्निका को अपने संबंधित समाज में लोक-प्रिय बनाने का प्रयत्न करे। जो लोग इसे पढ़ेंगे वे इन कार्यक्रमों से प्रभावित होंगे और उस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करेंगे जिसके लिए कि प्रेरणा दी जा रही है। एक निश्चित विचार धारा से प्रभावित लोगों का संगठन भी बन सकता है और उनके द्वारा ऐसे सामूहिक प्रयत्न भी आरम्भ हो सकते हैं जो युग-परिवर्तन की महत्व-

पूर्ण भूमिका के रूप में संसार के सामने आवें।
विचार क्रान्ति का प्रतिफल

नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनर्स्थान के लिए लोक मानस को अनुकूल एवं भावान्वित करने का हमारा प्रथम प्रयत्न होना चाहिए। इस प्रयत्न को विचार क्रान्ति कहा जा सकता है। विचार क्रान्ति जब मस्तिष्क क्षेत्र से उतर कर व्यवहार क्षेत्र में आवेगी तो उसका परम श्रेयस्कर स्वरूप नैतिक क्रान्ति जैसा दिखाई देगा। मनुष्य ईश्वर का पुत्र है। उसे पृथ्वी का देवता कहा गया है। असत् मार्ग छोड़ कर—असत् दृष्टिकोण का परित्याग कर यदि वह विवेक, सत्य, धर्म और कर्तव्य को अपना ले तो फिर इस धरती पर प्रत्यक्ष ही स्वर्ग अवतरित दिखाई देगा। इसी महा अभियान में संलग्न होने के लिए हम अखण्ड-ज्योति परिवार के प्रत्येक सदस्य का आह्वान करते हैं।

★ ★ ★

* आहार-विहार सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण *

—:—*—:—

युग-निर्माण के लिए आवश्यक विचार क्रान्ति का उपयोग यदि शरीर-क्षेत्र में किया जा सके तो हमारा बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधर सकता है। बीमारियों से सहज ही पिण्ड छूट सकता है। आज अपने शरीर की जो स्थिति है कल से ही उसमें आशाजनक परिवर्तन आरम्भ हो सकता है। अस्वस्थता का कारण असंयम एवं अनियमितता ही है। प्रकृति के आदेशों का उल्लङ्घन करने के दण्ड स्वरूप ही हमें बीमारी और कमजोरी का कष्ट भुगतना पड़ता है। सरकारी कानूनों की तरह प्रकृति के भी कानून हैं। जिस प्रकार राज्य के कानूनों को तोड़ने वाले अपराधी जेल की यातना भोगते हैं वैसे-ही प्रकृति के कानूनों की अवज्ञा कर स्वेच्छाचार बरतने वाले व्यक्ति बीमारियों का कष्ट सहते हैं और अशक्त,

दुर्बल बने रहते हैं। पूर्व जन्मों के प्रारब्ध दण्ड स्वरूप मिलने वाले तथा प्रकृति प्रकोप, महामारी, सामूहिक अव्यवस्था, दुर्घटना, एवं विशेष परिस्थिति वश कभी-कभी संयमी लोगों को भी शारीरिक कष्ट भोगने पड़ते हैं, पर ८० प्रतिशत शारीरिक कष्टों में हमारी बुरी आदतें और अनियमितता ही प्रधान कारण होती है।

सृष्टि के सभी जीव-जन्तु निरोग रहते हैं। अन्य पशुओं और उन्मुक्त आकार में विचरण करने वाले पक्षी यहाँ तक कि छोटे-छोटे कीट-पतङ्ग भी समय आने पर मरते तो हैं पर बीमारी और कमजोरी का कष्ट नहीं भोगते। जिन पशुओं को मनुष्य ने अपने बन्धन में बाँधकर अप्राकृतिक रहन सहन के लिए जितना विवश किया है उतनी अस्वस्थता का त्रास

हैं भोगना पड़ता है, अन्यथा रोग और दुर्बलता हम की कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। उसे तो हम स्वेच्छाचार बरत कर स्वयं ही बुलाया करते। यदि अपना दृष्टिकोण बदल दिया जाय, संयम और नियमितता की नीति अपना ली जाय तो फिर बीमारी रहे और न कमजोरी। डाक्टरों, अस्पतालों और औषधियों से रोग, कष्ट में तत्कालिक टकारा किसी हद तक भले ही मिल जाय पर उसका मूल कारण असंयम बना रहने से यह संभाना बनी ही रहेगी कि वही या कोई अन्य रोग फिर त्यक्त होजाय। इसलिए यदि स्वस्थ शरीर का निन्द लेना हो तो उसका निर्धारित मूल्य—संयम—पनाने के लिए तैयार होना चाहिए।

परिवर्तन साहस का काम है। कमजोर दिल माग के आदमी सोचते तो बहुत हैं पर करते कुछ ही। मन के लड़खाने से किसी की भूख नहीं ज़ती। पेट भरना हो तो रोटी कमाने, बनाने, और खाने का झंझट उठाने के लिए तैयार ही होना चाहिए। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मारो से छुटकारे के लिए कुछ दिन परहेज करना ही पर्याप्त नहीं है। अपनी आदतों ही संयम-लता और आहार-विहार में व्यवस्था रखने की तानो होगी। इस निर्माण में जिसे जितनी सफ़ाता मिलेगी वह उतना आरोग्य लाभ का आनन्द गन सकेगा।

व्यक्तिगत जीवन में हमें कुछ आदतों का पूरी द्वा और तत्परतापूर्वक छोड़ना और कुछ को ग्रहण रना आवश्यक है।

१—दो बार का भोजन ७

भोजन, दोपहर और शाम को दो बार ही दिया जाय। प्रातः दूध आदि हल्का पेय पदार्थ लेना पर्याप्त है। बार-बार खाते रहने की आदत बिलकुल छोड़ देनी चाहिए।

२—भोजन को ठीक तरह चबाया जाय

भोजन उतना चबाना कि वह सहज ही गले से

नीचे उतर जाय। इसकी आदत ऐसे डाली जासकती है कि रोटी अकेली, बिना साग के खावे और साग को अलग से खावें। साग के साथ गीली होने पर रोटी कम चबाने पर भी गले के नीचे उतर जाती है। पर यदि उसे बिना शाक के खाया जा रहा है तो उसे बहुत देर चबाने पर ही गले से नीचे उतारा जासकेगा। यह बात अभ्यास के लिए है। जब आदत ठीक होजाय तो शाक मिलाकर भी खा सकते हैं।

३—भोजन अधिक मात्रा में न हो ८

आधा पेट भोजन, एक चौथाई जल, एक चौथाई साँस आने जाने के लिए खाली रखना चाहिए। अर्थात् भोजन आधे पेट किया जाय।

४—स्वाद की आदत छोड़ी जाय

आचार मुरब्बे, सिरका, मिर्च, मसाले, खटाई, मीठा की अधिकता पेट खराब होने और रक्त को दूषित करने का कारण होती है। इन्हें छोड़ा जाय। हल्का-सा नमक और जरूरत हो तो थोड़ा धनियाँ, जीरा सुगन्ध के लिए लिया जा सकता है, पर अन्य मसाले तो छोड़ ही देने चाहिये। शरीर के लिए जितना नमक, शर्करा आवश्यक है उतना अन्न शाक आदि में पहले से ही मौजूद है। बाहर से जो मिलावट की जाती है वह तो स्वाद के लिए है। हमें स्वाद छोड़ना चाहिये। अभ्यास के लिए कुछ दिन तो नमक मीठा बिलकुल ही छोड़ देना चाहिये और अस्वाद व्रत पालन करना चाहिये। आदत सुधर जाने पर हल्का सा नमक, नींबू, आंवला, अदरक, हरा धनिया, पोदीना आदि को भोजन में मिलाकर उसे स्वादिष्ट बनाया जासकता है। सूखे मसाले स्वास्थ्य के शत्रु ही माने जाने चाहिए। मीठा कम-से-कम लें। आवश्यकतानुसार गुड़ या शहद से काम चलायें।

५—शाक और फलों का अधिक प्रयोग

शाकाहार को भोजन में प्रमुख स्थान रहे। आधा या तिहाई अन्न पर्याप्त है। शेष भाग शाक,

फल, दूध, छाछ आदि रहे। ऋतु-फल सस्ते भी होते हैं और अच्छे भी रहते हैं। आम, अमरूद, बेर, जामुन, शहतूत, पपीता, केला, ककड़ी, खीरा, तर-बूज, खरबूजा, आदि-आदि अपनी-अपनी फसलों पर काफी सस्ते रहते हैं। लौकी, तोरई, परबल, टिमा-टर, पालक, मेथी आदि सुगन्ध शकों की मात्रा सदा अधिक ही रखनी चाहिये। गेहूँ, चना, आदि को अंकुरित करके खाया जाय तो उनसे बादाम जितना पोषक तत्व मिलेगा। उन्हें कच्चा हजम न किया जा सके तो उबाला, पकाया भी जा सकता है। अन्न, शाक और फलों के छिलकों में जीवनतत्व (विटामिन) बहुत रहता है, इसलिए आम, केला, पपीता आदि जिनका छिलका आवश्यक रूप से हटाना पड़े उन्हें छोड़कर शेष के छिलके खाये जाने ही ठीक हैं।

६—हानिकारक पदार्थों से दूर रहें

मांस, मछली, अण्डा, पकवान, मिठाई, चाट, पकौड़ी जैसे हानिकारक पदार्थों से दूर ही रहना चाहिए। चाय, भाँग, शराब आदि नशों को स्वास्थ्य का शत्रु ही माना गया है। तमाखू खाना-पीना, सूँघना, पान चबाना आदि आदतें आर्थिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टि से हानिकारक हैं। वासी-कूसी, सड़ी-गली, गन्दगी के साथ बनाई हुई वस्तुओं से स्वास्थ्य का महत्व समझने वालों को बचते ही रहना चाहिए।

७—भाप से पकाए भोजन के लाभ

दाल-शाक पकाने में भाप की पद्धति उपयोगी है। खुले मुँह के बर्तन में तेज आग से पकाने से शाक के ७० प्रतिशत जीवन-तत्व नष्ट होजाते हैं इस क्षति से बचने के लिए कुकर जैसी भाप से पकाने की पद्धति अपनानी चाहिए। इसी प्रकार हाथ की चक्की का पिसा आटा काम में लाना चाहिए। मशीन की चक्कियों में पिसे आटे के अधिकांश जीवनतत्व नष्ट होजाते हैं। हाथ की चक्कियों और

भाप से पकाने के बर्तनों का घर-घर प्रचलन होना चाहिए। ढीले और कम कपड़े पहनने चाहिए। सर्दी-गर्मी का प्रभाव सहने की क्षमता बनाये रहनी चाहिए। चिन्ता और परेशानी से चिन्तित न रहकर हर घड़ी प्रसन्न मुद्रा बनाये रहनी चाहिए।

८—स्वास्थ्य रक्षाके लिए सफाई आवश्यक है।

सफाई का पूरा ध्यान रखा जाय। शरीर को अच्छी तरह धिसकर नहाना चाहिए। शरीर को स्पर्श करने वाले कपड़े रोज धोने चाहिए। बिस्तरों को जल्दी-जल्दी धोते रहा जाय। धूप में तो उन्हें नित्य ही सुखाया जाय। घरों में ऐसी सफाई रखनी चाहिए कि मकड़ी, मच्छर, खटमल, पिस्तू, जुए, चीलर, छिपकली, छल्लूदर, चूहे, चमगीदड़, घुन आदि बढ़ने न पावें। मल-मूत्र त्यागने के स्थानों की पूरी तरह सफाई रखी जाय। नालियाँ गन्दी न रहने पावें। खाद्य पदार्थों को ढक कर रखा जाय और सोते समय मुँह ढका न रहे। मकान में इतनी खिड़कियाँ और दरवाजे रहें कि प्रकाश और हवा आने जाने की समुचित गुंजायश बनी रहे। बर्तनों को साफ रखा जाय और उनके रखने का स्थान भी साफ हो। दीवार और फर्शों की जल्दी-जल्दी लिपाई, पुताई, धुलाई करते रहा जाय। सफाई का हर क्षेत्र में पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। हर भोजन के बाद कुल्ला करना, रात को सोते समय दाँत साफ करके सोना, अधिक ठण्डे और गरम पदार्थ न खाना दाँतों की रक्षा के लिए आवश्यक है। जो इन नियमों पर ध्यान नहीं देते उनके दाँत जल्दी ही गिरने और दर्द करने लगते हैं।

९—खुली वायु में रहिए

रात को जल्दी सोने और प्रातः जल्दी उठने की आदत डाली जाय। इससे स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और सबेरे के समय का जिस कार्य में भी उपयोग किया जाय उसी में सफलता मिलती है। प्रातः टहलने, व्यायाम एवं मालिश करने के उपरांत

रगड़कर नहाने का अभ्यास प्रत्येक स्वास्थ्य के क को करना चाहिए । सबेरे खुली हवा में ने वाले और व्यायाम करने वालों का स्वास्थ्य खराब नहीं होने पाता । जो स्त्रियाँ टहलने जा सकती उन्हें चक्की पीसनी चाहिए या ऐसा ई पसीना निकलने वाला कड़ा काम करना ए ।

—ब्रह्मचर्य का पालन

ब्रह्मचर्य का समुचित ध्यान रखा जायँ । विवा- और अविवाहितों को मर्यादाओं का समुचित करना चाहिए । इस सम्बन्ध में जितनी कठोरती जायगी स्वास्थ्य उतना ही अच्छा रहेगा । णिवियों और छात्रों के लिए तो यह और भी आवश्यक है क्यों कि इन्द्रिय असंयम से मान- दुर्बलता आती है और उन्हें अपने लक्ष्य तक में भारी अड़चन पड़ती है ।

यह दस साधारण नियम हैं जिनका व्यक्तिगत जीवन में प्रयोग करने के लिए हममें से हर एक को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार अधिका- धिक प्रयत्न करना चाहिये । परिवार के लोगों को इन स्वास्थ्य मर्यादाओं को पालन करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए । जो लोग अपने सम्पर्क में आयें उन्हें भी इन अमृत औषधियों का अवलम्बन करने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए । बदले हुए दृष्टि- कोण को अपनाने से स्वास्थ्य की समस्या हल होसकती है । राष्ट्रीय अस्वस्थता की समस्या का हल इन्हीं तथ्यों को अपनाने से होगा । इसलिए धर्म कर्तव्यों की तरह ही इन आरोग्य मर्यादाओं का हमें पालन करना चाहिए और धर्म प्रचार की भावना से ही इन तथ्यों को अपनाने के लिए दूसरों को प्रेरित करना चाहिए ।



* स्वास्थ्य संवर्धन के सामूहिक प्रयास *

में मिलजुल कर ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहिए स्वास्थ्य संवर्धन की दिशा में आन्दोलन जैसी वधियाँ सजीव हो उठें । सम्मिलित प्रयत्नों से र्ताओं में उत्साह आता है, आत्म संतोष है और जन कल्याण की संभावना भी अधिक हो जाती है । स्वास्थ्य आन्दोलन के संवंध मुझाव नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं ।

वनस्पतियों का उत्पादन

क, फल, वृक्ष और पुष्पों के उत्पन्न करने का न स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से बड़ा उपयोगी ता है । घरों के आस-पास फूल उगाने, पर लौकी, तोरई, सेम आदि की बेल चढ़ाने, में तुलसी का विरवा रोपने तथा जहाँ भी जगह हो वहाँ फूल, पौदे लगा देने का प्रयत्न

करना चाहिए । केला-पपीता आदि थोड़ी जगह होने पर भी लग सकते हैं । कोठियों बंगलों में अक्सर थोड़ी जगह खाली रहती है । वहाँ शाक एवं फूलों को आसानी से उगाया जा सकता है । लगाने, सींचने, गोड़ने, भेड़ बनाने आदि का काम घर के लोग किया करें तो उससे श्रम शीलता की आदत पड़ेगी और स्वास्थ्य सुधरेगा ।

किसानों को शाक और फलों की खेती करने की प्रेरणा देनी चाहिए जिससे उन्हें लाभ भी अधिक मिले और स्वास्थ्य सम्बन्धी एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति भी होने लगे । जहाँ-तहाँ बड़े-बड़े वृक्षों को लगाना लोग पुण्य कार्य समझे । रास्तों के सहारे पेड़ लगाये जायँ । बाग-बगीचे लगाने की जन रुचि उत्पन्न की जाय । वायु की शद्धि, वर्षा की अधिकता, फल, छाया, लकड़ी आदि की प्राप्ति, हरियाली से

चित्त की प्रसन्नता, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ना, आदि अनेकों लाभ वृक्षों से होते हैं। यह प्रवृत्ति जन-साधारण में पैदा करके संसार में हरियाली और शोभा बढ़ानो चाहिए। आवश्यक वस्तुओं के बीज, गमले, पाँदे आदि आसानी से मिल सकें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। हो सके तो घर-घर जाकर इस सम्बन्ध में लोगों का मार्ग दर्शन करना चाहिए। जड़ी बूटियों के उद्यान एवं फार्म लगाने का प्रयत्न करना भी स्वास्थ्य संवर्धन की दृष्टि से आवश्यक है। पंसारियों को दुकानों पर सड़ी गली, वर्षों पुरानी, गुण हीन जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं। उनसे बनी आयुर्वेदिक औषधियाँ भला क्या लाभ करेंगी? इस कमी को पूरा करने के लिए जड़ी बूटियों की कृषि की जोनी चाहिए और चिकित्सा की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा करने का प्रयत्न होना चाहिए।

१२—पकाने की पद्धति में सुधार

भाप से भोजन पकाने के बर्तन एवं चक्कियाँ उपलब्ध हो सकें ऐसी निर्माण और विक्रय की व्यवस्था रहे। इनका मूल्य सस्ता रहे जिससे उनको लोक प्रियता बढ़े। अब बाल बियरिंग लगी हुई चक्की बनने लगी हैं जो चलने में बहुत हलकी होती हैं तथा घण्टे में काफी आटा पीसती हैं। इनका प्रचलन घर-घर किया जाय और इनकी टूट-फूट को सुधारने तथा चलाने सम्बन्धी आवश्यक जानकारी सिखाई जाय। खाते-पीते घरों की स्त्रियाँ चक्की पीसने में अपमान और असुविधा समझने लगी हैं उन्हें चक्की के स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ समझाये जायें। पुरुष स्वयं पीसना आरम्भ करें। लोग हाथ का पिता आटा खाने का ही व्रत ले तो चक्की का प्रचलन बढ़ेगा। इसी प्रकार भाप से भोजन पकाने लगा तो वह ७० फोसदी अधिक पौष्टिक होगा। और खाने में स्वाद भी लगेगा। इनका प्रसार आन्दोलन के ऊपर ही निर्भर है।

१३—सात्विक आहार की पाक विद्या

तली हुई, भुनी और जली हुई अस्वास्थ्यकर

मिठाइयों और पकवानों के स्थान पर ऐसे पदार्थों का प्रचलन किया जाय जो स्वादिष्ट भी लगे और लाभदायक भी हों। लौकी की खीर, गाजर का हलुआ, सलाद, कचूमर, श्रोखण्ड, मोठा दलिया, अंकुरित अन्नों के व्यंजन जैसे पदार्थ बनाने की एक स्वतन्त्र पाक विद्या का विकास करना पड़ेगा जो दावतों में भी काम आसके और हानि जरा भी न पहुँचाते हुए स्वादिष्ट भी लगे। चाय पीने वालों की आदत छुड़ाने के लिए गेहूँ के भुने दलिये की या जड़ी बूटियों से बने हुए क्वाथ को चाय बनाना बताया जा सकता है। पान सुगाड़ी के स्थान पर सोफ और धनियाँ संस्कारित करके तैयार किया जा सकता है। प्राकृतिक आहार के व्यञ्जनों की पाक विद्या का प्रसार हो सके तो स्वास्थ्य रक्षा की दिशा में बड़ी सहायता मिले।

१४—गन्दगी का निराकरण

सार्वजनिक सफाई का प्रश्न सरकार के हाथों छोड़ देने से ही काम न चलेगा। लोगों को अपनी गन्दी आदतें छोड़ने के लिए और सार्वजनिक सफाई में दिलचस्पी लेने की प्रवृत्ति पैदा करनी पड़ेगी। बच्चों को घर से बाहर सार्वजनिक स्थानों पर एवं नालियों पर टट्टी करने बिठा देना, सड़कों तथा गलियों पर घर का कूड़ा बखेर देना, धर्मशालाओं में, प्लेटफार्मों, रेल के डिब्बों और सार्वजनिक स्थानों को फलों के छिलके-तथा नाक-थूक, रद्दी कागज, दौने, पत्तल आदि डाल कर गन्दा करना बुरी आदतें हैं, इससे बीमारो और गन्दगी फैलती है। देहातों में टट्टी-पेशाब के लिए उचित स्थानों की व्यवस्था नहीं होती। गाँव के निकटवर्ती स्थानों तथा गली कूचों में इस प्रकार की गन्दगी फैलती है। जिन कुँए तालाबों का पानी पीने के काम आता है वहाँ गन्दगी नहीं रोकी जाती। यह प्रवृत्ति बदल जानी चाहिए। लकड़ी के बने इधर से उधर रहे जाने वाले शौचालय यदि देहातों में काम आने लगे तो खेती को खाद भी मिले, गन्दगी भी न फैले और बेपर्दगी भी नहीं। खुरपी लेकर शौच जाना और

बोद कर उसमें शौच करने के उपरान्त मिट्टी की आदत पड़ जाय तो भी ग्रामीण जीवन में बढ़ि रहे गड्ढे खोद कर उसमें कंकड़ पत्थर डे डाल कर सोखने वाले पेशाब घर बनाये और उनमें चूना फिनायल पड़ता रहे तो जहाँ-शाब करने से फैलने वाली बीमारियों की रोक थाम हो सकती है। इसी प्रकार पशुओं मूत्र की सफाई की भी उचित व्यवस्था रहे तो लोगों से छुटकारा मिल सकता है। सार्वजनिक की समस्या देखने में तुच्छ प्रतीत होने पर तुतः बहुत बड़ी है। लोकसेवकों को जनता की आदतें बदलने के लिए इस सम्बन्ध में कुछ करना ही होगा, अन्यथा बढ़ते हुए रोग घटेंगे।

-नशेवाजी का त्याग

नशेवाजी की बुराइयों को समझाने के लिए और बुरी आदत को छुड़ाने के लिए सभी प्रचारकों का उपयोग किया जाय। पंचायतों, धार्मिक सत्रों एवं शुभ कार्यों के अवसर पर इस हानिकारक बुराई को छुड़ाने के लिए प्रतिज्ञाएँ ली जायें।

-व्यायाम और उसका प्रशिक्षण

प्रासन, व्यायाम, प्राणायाम सूर्य नमस्कार, खेल-सवरे का टहलना, अङ्ग संचालन, मालिस की विधियाँ सिखाने के लिए 'वर्ग' चलाये। सामूहिक व्यायाम करने के लिए जहाँ संभव है वहाँ दैनिक व्यवस्था की जाय। व्यायाम अपने में एक सर्वाङ्गपूर्ण चिकित्सा शास्त्र है। चार-पाँच पड़े हुए रोगी भी कुछ खास प्रकार के अङ्ग-संचालन, हलके व्यायाम करते हुए कठिन रोगों से ठीक हो सकते हैं। बूढ़े आदमी अपने बुढ़ापे को बीस साल आगे धकेल सकते हैं। कमजोर बालक के व्यक्ति, छोटे बच्चे, विद्यार्थी, किशोर, स्त्रियाँ, लड़कियाँ यहाँ तक कि गर्भवती स्त्रियों के लिए भी उनकी स्थिति के उपयुक्त व्यायाम ही आशाजनक प्रतिफल उत्पन्न कर सकता है।

इस प्रकार का ज्ञान हम लोग प्राप्त करें और उसको सर्व साधारण को दें। समय-समय पर ऐसे आयोजन करते रहें जिन्हें देखकर लोगों में इस प्रकार की प्रेरणा स्वयं पैदा हो।

अखाड़े, व्यायामशाला, क्रीड़ा-प्राङ्गण आदि स्वास्थ्य-संस्थानों की जगह-जगह स्थापना की जानी चाहिए। लाठी, भाला, तलवार, छुरा, धनुष आदि हथियार चलाने की शिक्षा जहाँ स्वास्थ्य सुधारती है, व्यायाम की आवश्यकता पूर्ण करती है, वहीं वह मनोबल और साहस भी बढ़ाती एवं आत्म-रक्षा की क्षमता उत्पन्न करती है। इस प्रकार के प्रशिक्षण देने वाले तैयार करना तथा लोगों में उसके लिए आवश्यक उत्साह पैदा करना हमारा काम होना चाहिए। कुश्ती, दौड़, तैराकी, रस्सा-कशी, लम्बी कूद, ऊँची छलांग, कबड्डी, गेंद आदि का दंगल, एवं प्रतियोगिता आयोजनों और पुरस्कार व्यवस्था करवाने से भी इन कार्यों में लोगों का उत्साह बढ़ता है। ऐसे सम्मेलन यदि ईर्ष्या-द्वेष से बचाये रखे जाय और गलत प्रतिस्पर्धा न होने दी जाय तो पारस्परिक प्रेमभाव बढ़ाने एवं गुण्डागिर्दी के विरुद्ध एक शक्ति प्रदर्शन का भी काम दे सकते हैं।

डम्बल, मुगदर, लेजम, खींचने के स्प्रिंग, तानने के रबड़ घेरे, गेंदबल्ला, आदि व्यायाम सम्बन्धी उपकरण तथा साहित्य हर जगह मिल सके ऐसी विक्रय व्यवस्था भी हर जगह रहना चाहिए।

'फर्स्ट एड' की शिक्षा का प्रबन्ध हर जगह रहना चाहिए और उसे विधिवत् सीखने तथा रैड क्रॉस सोसाइटी का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए उत्साह पैदा करना चाहिए। स्काउटिंग की भी भावना और शिक्षा का प्रसार होना आवश्यक है।

१७-साप्ताहिक उपवास

साप्ताहिक छुट्टी पेट को भी मिलनी चाहिए। छै.दिन काम करने के बाद एक दिन पेट को काम न करना पड़े, उपवास रखा जाया करे, तो पाचन क्रिया

में कोई खराबी न आने पाये। विश्राम के दिन सप्ताह भर की जमा हुई कब्ज पच जाया करे और अगले सप्ताह अधिक अच्छी तरह काम करने के लिए पेट सन्तुष्ट हो जाया करे। देश में अन्न की वर्तमान कमी के कारण विदेशों से बहुत दुर्लभ विदेशी मुद्रा व्यय करके अन्न मंगाना पड़ता है। यदि सप्ताह में एक दिन उपवास का क्रम चल पड़े तो वह कमी सहज ही पूरी हो जाय। पूरे दिन न बन पड़े तो एक समय भोजन छोड़ने की व्यवस्था तो करनी ही चाहिए। जो लोग अधिक अशक्त हों, वे दूध, फल शाक आदि भले ही ले लिया करें, पर सप्ताह में एक समय अन्न छोड़ने—उपवास करने का तो प्रचलन किया जाय। उपवास का आध्यात्मिक लाभ तो स्पष्ट ही है। शारीरिक लाभ भी कम नहीं।

१८—बड़ी दावतें और जूठन

बड़ी दावतों में अन्न का अपव्यय न होने देना चाहिए। प्रीतिभोजों में खाने वालों की संख्या कम से कम रहे और खाने की वस्तुएँ कम संख्या में ही परोसी जायँ, जिससे अन्न की बर्बादी न हो।

थाली में जूठन छोड़ने की प्रथा बिल्कुल ही बन्द की जाय। महतर या कुत्ते को भोजन देना हो तो अच्छा और स्वच्छ भोजन देना चाहिए। उच्छिष्ट भोजन कराने से तो उलटा पाप चढ़ता है। खाने वाले की भी शारीरिक और मानसिक हानि होती है। अन्न देवता का अपमान धार्मिक दृष्टि से भी पाप है। अन्न की बर्बादी तो प्रत्यक्ष ही है।

१९—सन्तान की सीमा मर्यादा

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या, आर्थिक कठिनाई साधनों की कमी और जन साधारण के गिरे हुए स्वास्थ्य के देखते हुए यही उचित है कि प्रत्येक

गृहस्थ कम से कम सन्तान उत्पन्न करे। अधिक सन्तान उत्पन्न होने से माताएँ दुर्बलताग्रस्त होकर अकाल में ही काल कवलित हो जाती हैं। बच्चे कमजोर होते हैं और ठीक प्रकार पोषण न होने पर अस्वस्थता एवं अकालमृत्यु के ग्रास बनते हैं। शिक्षा और विकास की समुचित सुविधा न होने से बालक भी अविकसित रह जाते हैं। इसलिए संतान को न्यूनतम रखने का ही प्रसार किया जाय। लोग ब्रह्मचर्य से रहें अथवा परिवार नियोजन विशेषज्ञों की सलाह लें। सन्तान के उत्तरदायित्वों एवं चिन्ताओं से जो व्यक्ति जितने हलके होंगे—वे उतने निरोग रहेंगे। यह तथ्य हर सद्गृहस्थ भली प्रकार समझ सके इसी में उसका कल्याण है।

२०—प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी

पंच तत्वों से रोग निवारण की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए। जगह-जगह ऐसे चिकित्सालय रहें। इनमें उपवास एनेमा, जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, मिट्टी, भाप आदि साधनों की सहायता से शरीर का कल्प जैसा शोधन होता है और एक रोग की ही नहीं, समस्त रोगों को जड़ ही कट जाती है। सर्व साधारण को इस पद्धति का इतना ज्ञान करा दिया जाय कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी तथा अपने घर के लोगों की चिकित्सा स्वयं ही कर लिया करे।

यह सभी प्रयत्न ऐसे हैं जो सामूहिक रूप से ही प्रसारित किये जा सकते हैं। इन्हें आन्दोलन का रूप मिलना चाहिए और इनका संचालन 'अखण्ड ज्योति परिवारों' के सम्मिलित प्रयत्नों से होता रहना चाहिए।

*** अशिक्षा का अन्धकार दूर किया जाय ***

—)≡(००)≡(—

जीवन को सुविकसित करने के लिए जिस मानसिक विकाश की आवश्यकता है उसके लिए 'शिक्षा' की भारी आवश्यकता होती है। माना कि शिक्षा प्राप्त करके भी कितने ही लोग उसका सदुपयोग नहीं करते। इस बुराई के रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि मानसिक विकाश के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। ज्ञान का प्रकाश अन्तरात्मा में शिक्षा के अध्ययन से ही पहुँचता है। भौतिक विकाश के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से अनुभव की जाती है। खेद की बात है कि देश में अभी तक चौथाई जनता भी साक्षर नहीं हो पाई है। युग-परिवर्तन के लिए साक्षरता को एक अनिवार्य आवश्यकता मानते हुए पूरे उत्साह से हमें ज्ञान यज्ञ का आयोजन करना चाहिये और देशव्यापी साक्षरता के लिए ऐसा प्रबल प्रयत्न करना चाहिए कि कोई वयस्क व्यक्ति निरक्षर न रहे। इस सम्बन्ध में दस कार्य-क्रम नीचे प्रस्तुत हैं—

२१—बच्चों को स्कूल भिजवाया जाय ७

जो बच्चे स्कूल जाने लायक हैं उन्हें पाठशालाओं में भिजवाने के लिए उनके अभिभावकों को सहमत करना चाहिए। जिन्होंने पढ़ना छोड़ दिया है उन्हें फिर पाठशाला में प्रवेश करने या प्राइवेट पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। वयस्कों को इसके लिये तैयार किया जाय कि वे प्रौढ़ पाठशालाओं में पढ़ने लगें। परिवार के साक्षर लोग मिलकर अपने घर की नारियों या अन्य अशिक्षितों को शिक्षा का महत्व समझाते हुए उन्हें पढ़ने के लिए राजामन्द करें। ७

२२—शिक्षितों की पत्नी अशिक्षित न रहें

शिक्षितों को इसके लिये तैयार किया जाय कि वे अपने घर के निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए

उन्हें समझावें, सहमत करें, और पढ़ाने के लिये स्वयं नियमित रूप से समय निकालें। स्त्रियाँ अधिकांश घरों में अशिक्षित या स्वल्प शिक्षित होती हैं। शिक्षित पतियों का परम पवित्र धर्म-कर्तव्य यह है कि पत्नी को सच्चे अर्थों में अर्धाङ्गिनी बनाने के लिए उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयत्न करें। स्वयं न पढ़ा सकें तो दूसरे माध्यम से उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध करें।

२३—प्रौढ़ पाठशालाओं का आयोजन

सेवा भावी शिक्षित लोग मिलजुल कर गाँव-गाँव और मुहल्ले-मुहल्ले में रात्रि को फुरसत के समय चलने वाली प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित करें। अशिक्षितों को समझा बुझाकर उनमें भर्ती करना और प्रेमपूर्वक पढ़ाना उन सरस्वती पुत्रों का काम होना चाहिए। धन उसी का धन्य है जो दूसरों की सुविधा बढ़ाने में काम आवे। शिक्षा उसी की धन्य है जो दूसरे अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में प्रयुक्त हो। जिस प्रकार अशिक्षितों को पढ़ने के लिए सहमत और तत्पर करना एक बड़ा काम है, उसी प्रकार शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए नित्य नियमित रूप से कुछ समय देते रहने वाले सेवा भावी सज्जनों को तैयार करना और फिर उनके उत्साह को बनाये रहना एक महत्वपूर्ण प्रयत्न है। दोनों ही वर्गों को प्रेरणा देकर जगह-जगह प्रौढ़ पाठशालाएँ चालू कराई जानी चाहिये।

२४—प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था

महिलाओं की प्रौढ़ पाठशालाएँ चढ़ाने का समय दिन ढलते तीसरे पहर का ठीक रहता है। घर गृहस्थी के काम से निवृत्त होकर महिलाएँ तीसरे पहर, प्रायः दो से चार बजे तक फुरसत में रहती हैं। उनकी पाठशालाएँ उसी समय चलें। अच्छा

हो शिक्षित महिलाएँ ही नारी शिक्षा का कार्य अपने हाथ में ले । पर यदि वैसा न होसके तो १५-१६ वर्ष से कम आयु के प्रतिभावान लड़के अथवा वयोवृद्ध सज्जन इसके लिए उपयुक्त रह सकते हैं ।

२५-शिक्षा के साथ दीक्षा भी ⑥

प्रौढ़ शिक्षा के लिए एक व्यवस्थित पाठ्य क्रम बनाया जाय, इसके लिये ऐसी पुस्तकें उपयोग में लाई जावे जो ज्ञान-दीक्षा पूरा करती हो । अक्षर ज्ञान के साथ-साथ मानव-जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले पाठ इन पुस्तकों में रहें । विचार क्रान्ति, नैतिक उत्कर्ष एवं युग-निर्माण की विचार धारा इन पाठ्य पुस्तकों में आजाये । शिक्षक पढ़ाते-समय शिक्षार्थियों से उन पाठों में आये हुए विषयों पर विचार विनिमय भी किया करे । समाज शास्त्र, नागरिक शास्त्र, स्वास्थ्य, धर्म, सदाचार, राजनीति विश्व परिचय, आदि की मोटी-मोटी जानकारी का इस शिक्षण में ऐसा समावेश रहे कि शिक्षार्थी आज की परिस्थितियों से, वर्तमान युग से और मानव जाति के सामने प्रस्तुत समस्याओं से भली प्रकार परिचित होसके ।

२६-नये स्कूलों की स्थापना ⑦

जहाँ स्कूलों की आवश्यकता है, वहाँ उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्न किये जाय । जन सहयोग से नये विद्यालयों की स्थापना तथा आरम्भ करके पीछे उन्हें सरकार के सुपुर्द कर देने की पद्धति अच्छी है । स्कूल की इमारतों के लिये खाली जमीनें या मकान लोगों से बिना मूल्य प्राप्त करना, या जनसहयोग से नये सिरे से बनाना, उत्साही प्रयत्नशील लोगों की प्रेरणा से सुविधापूर्वक होसकता है । अध्यापकों का खर्च भी फीस की तरह सहायता देकर लोग आसानी से चला सकते हैं । धनीमानी लोग इस दिशा में कुछ विशेष उत्साह दिखा सके ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिये ।

२७-रात्रि पाठशाला चलाई जाएँ

ऐसी रात्रि पाठशालाएँ भी चलाई जायँ जिनमें साधारण पढ़े-लिखे काम-काजी लोग अपनी शिक्षा को आगे बढ़ा सकें । स्वल्प शिक्षित लोग जो अपनी पढ़ाई समाप्त कर चुके हैं और काम-काज में लग गये हैं उनके लिए शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के द्वार प्रायः रुके हुए ही पड़े रहते हैं । इस कठिनाई को दूर किया जाना चाहिए । निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए जिस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यक है, उसी प्रकार स्वल्प शिक्षितों को सुशिक्षित बनाने के ऐसे प्रयत्न भी चलने चाहिए जिनमें रात्रि को फुरसत के समय दो घण्टे पढ़ने की सुविधा प्राप्त कर लोग आगे उन्नति कर सकें । प्राइवेट पढ़कर परीक्षा देने की सुविधा कई सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में होती है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पुरुषों के लिए और महिला विद्यापीठ की स्त्रियों के लिए उपयोगी रहती है । प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल तक की प्राइवेट परीक्षाएँ सरकारी शिक्षा-विभाग भी स्वीकार कर लेता है । जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ उसी प्रकार की ऐसी पाठशालाएँ चले । ऐसी पाठशालाओं का खर्च चलाने के लिए छात्रों से फीस भी ली जासकती है ।

२८-शिक्षित ज्ञानऋण चुकायें ⑧

शिक्षित लोग पाँच व्यक्तियों को शिक्षित करना अपना एक ज्ञानऋण जैसा उत्तरदायित्व मानें, और उसे चुकाने के लिए प्रतिज्ञाएँ लेकर जुट जावे, ऐसा लोक शिक्षण करना चाहिए । जिस प्रकार धनी लोग कुछ दान-पुण्य करते रहते हैं उसी प्रकार शिक्षा रूपी धन में से भी दान-पुण्य करने की प्रथा आरंभ करनी चाहिए ।

तीर्थ-यात्रा करके जब तक कोई व्यक्ति घर आकर कुछ दान-पुण्य, कथा, ब्रह्मभोज नहीं करता तब तक उसकी तीर्थ-यात्रा सफल नहीं मानी जाती । इसी प्रकार ज्ञान-ऋण चुकाये बिना किसी की शिक्षा

को सफल एवं सार्थक न माने जाने की मान्यता जागृत की जाय। सरकारो टैक्स या उधार लिया हुआ कर्जा चुकाया जाना जिस प्रकार आवश्यक माना जाता है उसी प्रकार हर शिक्षित पाँच अशिक्षितों को शिक्षित बनाने के लिए समय दान या धन दान देकर अपने को ऋणमुक्त करने का प्रयत्न करें। जो लोग समय नहीं दे सकते वे धन देकर अध्यापकों के वेतन के लिए दान दिया करें, यह भी होसकता है और इस प्रकार भी ज्ञानऋण चुक सकता है।

२६--पुस्तकालय और वाचनालय

पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना की जाय। उनमें केवल ऐसी चुनी हुई पुस्तकें या पत्र पत्रिकाएँ ही मँगाई जावे जो जीवन निर्माण की सही दिशा में प्रेरणा दे सकें। अश्लील, जासूसी, भद्दी भोंडी विचार धारा देने वाली या मनोरंजन मात्र का उद्देश्य पूरा करके समय नष्ट करने वाली, भ्रम उत्पन्न करने वाली चीजें संख्या की अधिकता के मोह में भूलकर भी इन पुस्तकालयों में जमा न की जायें। भोजन में जो स्थान विषाक्त खाद्य पदार्थों का है वही पुस्तकालयों में गन्दे साहित्य का है। इस शुद्धि का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए चुनी हुई पुस्तकों के वाचनालय पुस्तकालय स्थापित किये जाय। उसका खर्च पढ़ने वालों से कुछ शुक्ल लेकर या चंदा से पूरा किया जाय। जिनके यहाँ अच्छी पुस्तकें जमा हैं या पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं उनसे वह वस्तुएँ उधार भी माँगी जासकती हैं और इस प्रकार प्रयत्न करने से भी पुस्तकालय वाचनालय चल सकते हैं। लोक शिक्षण के लिए इनकी भी बड़ी आवश्यकता है।

३०--अध्ययन की रुचि जगावें

पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न करना, युग-निर्माण की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। आमतौर से स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद लोग पुस्तकों को नमस्कार कर लेते हैं और अपने काम

धन्धे को ही महत्व देते हैं। उनकी दृष्टि में पुस्तकें पत्रिकाएँ आदि पढ़ना ताश खेलने की तरह समय को व्यर्थ गँवाने वाला मनोरंजन मात्र होता है। इस मान्यता को हटाया ही जाना चाहिये और निरक्षरता की भाँति "ज्ञान-वृद्धि की उपेक्षा" से भी प्रबल संघर्ष आरम्भ करना चाहिए। जन-मानस में यह बात गहराई तक प्रवेश कराई जानी चाहिये कि पेट को रोटी देने की भाँति बुद्धि को ज्ञान-वर्धक साहित्य की आवश्यकता है। स्वाध्याय जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है। उसकी उपेक्षा करने से आन्तरिक विकाश की समस्या हल नहीं हो-सकती।

घर-घर जाकर पढ़ने में अभिरुचि उत्पन्न करना, पुस्तकें पढ़ने का महत्व बताना और फिर उन्हीं के निवास स्थानों पर उपयोगी पुस्तकें पहुँचाना एक बहुत बड़ा काम है। चलते-फिरते पुस्तकालयों का यही रूप रहे कि ज्ञान प्रचारक लोग अपने झोले में कुछ पुस्तकें रखकर घर से निकला करें और जन-सम्पर्क बढ़ाकर जिनमें अभिरुचि उत्पन्न होजाय उन्हें पुस्तकें पढ़ने देने तथा वापिस लेने जाया करें। चाय का प्रचार इसी प्रकार घर-घर जाकर मुफ्त में चाय पिलाकर प्रारम्भिक प्रचारकों ने किया था। अब तो चाय की आदत इतनी बढ़ गई है कि पीने वाले हड़बड़ाते फिरा करते हैं। इसी प्रकार की अभिरुचि सद्ज्ञान साहित्य पढ़ने और स्वाध्याय को नित्य नियमित रूप से करते रहने के लिए उत्पन्न होसके ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस प्रवृत्ति की अभिवृद्धि पर युग-निर्माण योजना की सफलता बहुत कुछ निर्भर रहेगी।

शिक्षा प्रसार आवश्यक है। मानसिक उत्कर्ष के लिए यह एक अनिवार्य कार्य है। इसके बिना देश आगे नहीं बढ़ सकता। विचार क्रान्ति के उद्देश्य की पूर्ति लोक शिक्षण पर ही निर्भर है और वह कार्य शिक्षा प्रसार से ही होगा। हमें इसके लिए जी जान से जुटाना चाहिए।



.....: जन-मानस को धर्म-दीक्षित करने की योजना :.....

—)~*~(—

ज्ञान को उपनिषदों में अमृत कहा गया है। जीवन को ठीक प्रकार जीने और सही दृष्टिकोण अपनाये रहने के लिए प्रेरणा देते रहना और श्रद्धा स्थिर रखना यही ज्ञान का उद्देश्य है। जिन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया उनका मनुष्य जन्म धन्य हो जाता है। शिक्षा का उद्देश्य भी ज्ञान की प्राप्ति ही है। सद्ज्ञान को ही विद्या या दीक्षा कहते हैं। जिसे यह सम्पत्ति प्राप्त हो गई उसे और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

जीवन में ज्ञान को कैसे धारण किया जाय और उसे व्यापक कैसे बनाया जाय, इस सम्बन्ध में कुछ कार्यक्रम नीचे प्रस्तुत हैं—

३१—आस्तिकता की आस्था

आस्तिकता पर गहरी निष्ठा-भावना मन में जमी रहने से मनुष्य अनेक दुष्कर्मों से बच जाता है और उसकी आंतरिक प्रगति सन्मार्ग की ओर होती रहती है। परमात्मा को सर्व-व्यापक और न्यायकारी मानने से छुप कर पाप करना भी कठिन हो जाता है। राजदंड से बचा जा सकता है पर सर्वज्ञ ईश्वर के दंड से चतुरता करने वाले भी नहीं बच सकते। यह विश्वास जिनमें स्थिर रहेगा वे कुमार्ग से बचेंगे और सत्कर्मों के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने और उसकी कृपा प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहेंगे। आस्तिकता व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सुख शान्तिमय नाये रहने का अचूक साधन है। उसे हर व्यक्ति अपने अंतःकरण में गहराई तक प्रतिष्ठित रखे यह प्रयत्न करना चाहिए।

चाहे कितना ही व्यस्त कार्यक्रम क्यों न हो प्रातः उठकर उठते और रात को सोते समय कम-से-कम ५-१५ मिनट सर्व शक्तिमान, न्यायकारी परमात्मा का ध्यान करना चाहिए और उससे सद् विचारों एवं सत्कर्मों की प्रेरणा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। इतनी उपासना तो प्रत्येक व्यक्ति करने

ही लगे। जिन्हें कुछ सुविधा और श्रद्धा अधिक हो वे नित्य नियमपूर्वक स्नान करके उपासना स्थल पर गायत्री महामंत्र का जप किया करें। अन्य देवताओं या विधानों से उपासना करने वाले भी कुछ न कुछ गायत्री मंत्र अवश्य कर लिया करें। इससे आत्मिक प्रगति में बड़ी सहायता मिलती है।

३२—स्वाध्याय की साधना

जीवन निर्माण की आवश्यक प्रेरणा देने वाला सत्साहित्य नित्य नियमपूर्वक पढ़ना ही चाहिए। स्वाध्याय को भी साधना का ही एक अंग माना जाय और कुछ समय इसके लिए नियत रखा जाय। कुविचारों को शमन करने के लिए नित्य सद् विचारों का सत्संग करना आवश्यक है। व्यक्ति का सत्संग तो कठिन पड़ता है पर साहित्य के माध्यम से संसार भर के जीवित या मृतक सत्पुरुषों के साथ सत्संग किया जा सकता है। यह जीवन का महत्वपूर्ण लाभ है, इससे किसी को भी वंचित नहीं रहना चाहिए। जो पढ़े लिखे नहीं हैं उन्हें दूसरों से सत्साहित्य पढ़ा कर सुनने की व्यवस्था करनी चाहिए।

३३—संस्कारित जीवन

जीवन को समय-समय पर संस्कारित करने के लिए हिन्दू धर्म में षोडश संस्कारों का महत्वपूर्ण विधान है। पारिवारिक समारोह के उत्साह पूर्ण वातावरण में सुव्यवस्थित जीवन की शिक्षा इन अवसरों पर मनीषियों द्वारा दी जाती है और अग्नि-देव तथा देवताओं की साक्षी में इन नियमों पर चलने के लिए प्रतिज्ञा कराई जाती है तो उसका ठोस प्रभाव पड़ता है। पुंसवन, सीमन्त, नामकरण, मुण्डन, अन्न प्राशन, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ, अत्येष्टि आदि संस्कारों का कर्मकाण्ड बहुत ही शिक्षा और प्रेरणा से भरा हुआ है। यदि उन्हें ठीक तरह किया जाय तो हर व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़े।

खेद है कि संस्कारों के कर्मकाण्ड अब केवल चिन्ह पूजा मात्र रह गये हैं। उनमें खर्च तो बहुत होता है पर प्रेरणा कुछ नहीं मिलती। हमें संस्कारों का महत्व जानना चाहिए और कराने की विधि तथा शिक्षा को सीखना समझना चाहिए। संस्कारों का पुनः प्रसार किया जाय और उनके कर्मकाण्ड इस प्रकार किये जायँ कि कम-से-कम खर्च में अधिक-से-अधिक प्रेरणा प्राप्त कर सकना सर्व मुलभ हो सके।

३४-पर्व और त्यौहारों का सन्देश

जिस प्रकार व्यक्तिगत नैतिक प्रशिक्षण के लिए संस्कारों की उपयोगिता है उसी प्रकार सामाजिक सुव्यवस्था की शिक्षा पर्व और त्यौहारों के माध्यम से दी जाती है। हर त्यौहार के साथ महत्वपूर्ण आदर्श और संदेश सन्निहित हैं जिन्हें हृदयंगम करने से जन साधारण को अपने सामाजिक कर्तव्यों का ठीक तरह बोध हो सकता है और उन्हें पालन करने की आवश्यक प्रेरणा मिल सकती है।

त्यौहारों के मनाये जाने के सामूहिक कार्यक्रम बनाये जाया करें, और उनके विधान, कर्मकाण्ड ऐसे रहें जिनमें भाग लेने के लिए सहज ही आकर्षण हो और इच्छा जगे। सब लोग इकट्ठे हों, पुरोहित लोग उस पर्व का संदेश सुनाते हुए प्रवचन करें और उस संदेश में जिन प्रवृत्तियों की प्रेरणा है उन्हें किसी रूप से कार्यान्वित भी किया जाया करे।

संस्कारों और त्यौहारों को कैसे मनाया जाया करे और उपस्थित लोगों को क्या सिखाया जाया करे इसकी शिक्षा व्यवस्था हम जल्दी ही करेंगे। उसे सीख कर अपने संबद्ध समाज में इन पुण्य-प्रक्रियाओं को प्रचलित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३५-जन्म-दिन समारोह

हर व्यक्ति का जन्म दिन समारोह मनाया जाय। उसके स्वजन संबंधी वधाई और शुभ कामनाएँ देया करें। एक छोटा जन्मोत्सव मनाया जाया करे जसमें वह व्यक्ति आत्म-निरीक्षण करते हुए शेष जीवन को और भी अधिक आदर्शमय बनाने के लिए कदम उठाया करे। वधाई देने वाले लोग भी

कुछ ऐसा ही प्रोत्साहन उसे दिया करें। हर जन्म-दिन जीवनशोधन की प्रेरणा का पर्व बने ऐसी प्रथा-परम्पराएँ प्रचलित की जानी चाहिए।

३६-व्रतशीलता की धर्म धारणा

प्रत्येक व्यक्ति व्रतशील बने। इसके लिए व्रत-आन्दोलन को जन्म दिया जाना चाहिए। भोजन, ब्रह्मचर्य, अर्थ उपाजन, दिनचर्या, खर्च का निर्धारित बजट, स्वाध्याय, उपासना, व्यायाम, दान सोना उठना आदि हर कार्य की निर्धारित मर्यादाएँ अपनी परिस्थितियों के अनुकूल निर्धारित करके उसका कड़ाई के साथ पालन करने की आवश्यकता हर व्यक्ति अनुभव करे, ऐसा लोक शिक्षण किया जाय। बुरी आदतों को क्रमशः घटाते चलना और सद गुणों को निरन्तर बढ़ाते चलना भी इस आन्दोलन का एक अंग रहे। साधना-मय, संयमी और मर्यादित जीवन बिताने की कला हर व्यक्ति को सिखाई जाय ताकि उसके लिए प्रगतिशील हो सकना संभव हो सके।

३७-मन्दिरों को प्रेरणा-केन्द्र बनाया जाय

मन्दिर मठों को नैतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाया जाय। इतनी बड़ी इमारतों में प्रौढ़ पाठशालाएँ, रात्रि पाठशालाएँ, कथा-कीर्तन, प्रवचन, उपदेश, पर्व त्यौहारों के सामूहिक आयोजन, यज्ञोपवीत, मुण्डन आदि संस्कारों के कार्यक्रम, औषधालय, पुस्तकालय, संगीत, शिक्षा, आसन, प्राणायाम, व्यायाम, की व्यवस्था, व्रत आन्दोलन जैसी युग-निर्माण की अनेकों गति विधियों को चलाया जा सकता है। भगवान की सेवा पूजा करने वाले व्यक्ति ऐसे हों जो बचे हुए समय का उपयोग मन्दिर को धर्म प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाये रहने और उनका संचालन करने में लगाया करें। प्रतिमा की आरती, पूजा, भोग, प्रसाद की तरह ही जन-सेवा के कार्य क्रमों को भी यज्ञ माना जाना चाहिए और इनके लिए मन्दिरों के संचालकों एवं कार्यकर्ताओं से अनुरोध करना चाहिए कि मन्दिरों को उपासना के साथ-साथ धर्म सेवा का भी केन्द्र बनाया जाय।

३८—गायत्री मन्दिरों में युग-निर्माण केन्द्र

जहाँ पुराने मन्दिरों के संचालक उपरोक्त प्रकार का सुधार करने के लिए तैयार न हों वहाँ गायत्री ज्ञान मन्दिरों की स्थापना करके युग-निर्माण की सत्-प्रवृत्तियों का आरम्भ कर दिया जाय। इस संबंध में अहमदाबाद शाखा ने उत्साहबर्धक पहल की है। उन्होंने समीपवर्ती क्षेत्र में गायत्री का प्रचार करते हुए चौबीस-चौबीस हजार गायत्री मन्त्र लिखाये हैं और करीब ५०० व्यक्तियों के सहयोग से सवा करोड़ मन्त्र लिखा कर उन्हें 'श्रम निर्मित प्रतिमा' के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। माता का बड़ा चित्र शीशे में मढा कर वहाँ रहेगा और प्रति दिन पूजा उपासना होती रहेगी। जिनने मन्त्र लिखे हैं उनका स्वाभाविक प्रेम और सहयोग रहने से उस केन्द्र में अनेकों सत्-प्रवृत्तियाँ संचालित की जा सकेंगी।

अन्य लोग भी ऐसे ही प्रयत्न कर सकते हैं। २४ हजार मन्त्रों की कापियाँ १०० व्यक्तियों से लिखा कर २४ लक्ष का एक मन्त्र लेखन महापुरुषचरण मूर्ति-मान बना कर किराये के या माँगे हुए कमरे में सुसज्जित रूप से प्रतिष्ठापित कर दिया जाय, और उसी स्थान को युग-निर्माण योजना को प्रसारित करने का केन्द्र बनाया जाय। इमारतें बनाना जरूरी नहीं। शक्तियाँ कार्य विस्तार में लगनी चाहिए। मूर्तियों के भोग प्रसाद का अनिवार्य उत्तर-दायित्व उठाने की अपेक्षा बड़े साइज के सुसज्जित चित्रों की ही स्थापना और उनकी पूजा आरती का सामान्य क्रम चलाने में कोई बंधन और खर्च नहीं बँधता। ऐसे छोटे मन्दिर हर जगह आसानी से बन सकते हैं। इनमें जन सहयोग की जितनी आवश्यकता रहती है उतनी धन की नहीं। ऐसे मन्दिर हर जगह बनाये जायँ।

३९—साधु ब्राह्मण भी कर्तव्य पालें

पंडित, पुरोहित, ग्राम गुरु, पुजारी, साधु, महात्मा, कथा वाचक आदि धर्म के नाम पर आजीविका चलाने वाले व्यक्तियों की संख्या भारत वर्ष में ६० लाख है। इन्हें जन सेवा एवं धर्म प्रवृत्तियों को

चलाने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए। ईसाई धर्म में करीब १ लाख पादरी हैं जिनके प्रयत्न से संसार की तीन अरब आबादी में से करीब १ अरब लोग ईसाई बन चुके हैं। इधर साठ लाख संत-महंतों के होते हुए भी हिन्दू धर्म की संख्या और उत्कृष्टता दिन-दिन गिरती जा रही है, यह दुख की बात है। इस पुरोहित वर्ग को समय के साथ बदलने और जनता से प्राप्त होने वाले मान एवं निर्वाह के बदले कुछ प्रत्युपकार करने की बात सुझाई-समझाई जाय। इतने बड़े जन समाज को केवल आडम्बर के नाम पर समय और धन नष्ट करते हुए नहीं रहने देना चाहिए।

४०—धर्म सेवा का उत्तर-दायित्व

यदि यह प्रयत्न सफल नहीं होता है तो धर्म-प्रचार में उत्तर-दायित्व को हम लोग मिल जुल कर कंधों पर उठावें। हम में से हर व्यक्ति धर्म प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए कुछ समय नियमित रूप से दिया करे। जिन्हें पारिवारिक उत्तर-दायित्वों से छुटकारा मिल चुका है, जो रिटायर्ड हो चुके हैं या जिनके घर में गुजारे के आवश्यक साधन मौजूद हैं उन्हें अपना अधिकांश समय लोक हित और परमार्थ के लिए लगाने की प्रेरणा उत्पन्न हो ऐसा प्रयत्न किया जाय। दानप्रस्थ आश्रम पालन करने की प्रथा अब लुप्त हो गई है। उसे पुनः सजीव किया जाय। ढलती आयु में गृहस्थ के उत्तर-दायित्वों से मुक्त होकर लोग घर में रहते हुए लोक सेवा में अधिक समय दिया करें तो संत-महात्माओं और ब्राह्मण पुरोहितों का आवश्यक उत्तर-दायित्व किसी प्रकार अन्य लोग अपने कंधे पर उठाकर पूरा कर सकते हैं।

शिक्षा के साथ-साथ दीक्षा की-विद्या की-ज्ञान चेतना की अभिवृद्धि भी आवश्यक है। समाज की मानसिक स्थिति को स्वच्छ बनाने के लिए ज्ञान का अधिकाधिक प्रसार होना चाहिए। इसके लिए उपरोक्त प्रकार के अथवा अन्य जो भी उपाय संभव हों उन्हें कार्यान्वित करना चाहिए। * *

* सभ्य समाज की स्वस्थ रचना *

सामाजिक सुव्यवस्था के लिए हमें अपना वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन भी ऐसा बनाना चाहिए कि उसका सत्प्रभाव सारे समाज पर पड़े। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में जहाँ व्यक्तिक उन्नति हो गया है उसे सुधारना चाहिए। स्वस्थ परम्पराओं को सुदृढ़ बनाने और अस्वस्थ प्रथाओं को हटाने का ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि सभ्य समाज की रचना का लक्ष्य पूर्ण हो सके। नीचे कुछ ऐसे ही कार्यक्रम दिये गये हैं:—

४१—सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा

सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। व्यक्ति अपने आपको संकीर्ण दायरे तक ही सीमित न रखे। स्त्री बच्चों को ही अपना न माने वरन् भाई, बहिन, माता-पिता, एवं अन्य सम्बद्ध कुटुम्बियों की प्रगति एवं सुव्यवस्था का भी आत्मीयता पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। सब लोग मिल जुल कर रहें, एक दूसरे को सहायता करें, सहनशीलता, सहिष्णुता, त्याग और उदारता की सद्वृत्तियों को बढ़ावें, यही आत्म विकास की श्रेष्ठ परम्परा है। स्वार्थ को परमार्थ में परिणत करने की परम्परा सम्मिलित कुटुम्ब में ही सम्भव है। अशान्ति और मनोमलिन्य उत्पन्न करने वाले कारणों को हटाना चाहिए किन्तु मूल आधार को नष्ट नहीं करना चाहिए। समाजवाद का प्राथमिक रूपा सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा ही है। उसे सुविकसित करना ही श्रेष्ठ है।

४२—पारिवारिक विचारगोष्ठी

प्रत्येक परिवार में नित्य विचार गोष्ठी के रूप में सत्सङ्ग क्रम चला करे। कथा-कहानी, पुस्तकें पढ़ कर सुनाना, सामयिक समाचारों की चर्चा करते हुए जीवन को विभिन्न समस्याओं के सुलझाने का प्रशिक्षण करना चाहिए। बड़ों के चरण छूकर

प्रणाम करने की और छोटों को भी 'तू' न कह कर तुम या आप कहने की शिष्ट परम्पराएँ हर परिवार में चलनी चाहिए। हर घर में उपासना कक्ष हों जहाँ बैठ कर कम से कम दस निमट घर का हर सदस्य उपासना किया करे। घरेलू पुस्तकालय से विहीन कोई घर न रहे। जिन्दगी कैसे जिएँ और नित्य-प्रति सामने आती रहने वाली गुत्थियों को सुलझाने के लिए संजीवन विद्या का साहित्य बचपन से ही पढ़ा और सुना जाना चाहिए। उपासना स्वाध्याय और सत्संग की नियमित व्यवस्था रहे तो उसका प्रतिफल परिवारों के रूप में सामने आवेगा और सभ्य समाज की रचना का उद्देश्य आसानी से पूर्ण होगा।

४३—सत्प्रवृत्ति का अभ्यास

परिवारों में पारस्परिक सहयोग, सभी का परिश्रमी होना, टूटी, पुरानी वस्तुओं की मरम्मत और सदुपयोग, कोने कोने में सफाई, वस्त्रों के धोने का अधिकांश काम घरमें होना, सभी सदस्यों का नियमित व्यायाम, घरेलू झगड़ों के सुलझाने की व्यवस्था, शिक्षा में सभी को अभिरुचि, स्यावलम्बन और बौद्धिक विकास के लिए सतत् प्रयत्न, मितव्ययिता और सादगो, कपड़ों की सिलाई आदि गृह-उद्योग का सूत्रपात, लोक हित के लिए नित्य नियमित दान जैसे अनेक कार्यक्रम घर की प्रयोग-शाला में चलाये जा सकते हैं। यही प्रशिक्षण बड़े रूप में विकसित हों तो सारा समाज सभ्य और सुसंस्कृत बन सकता है।

४४—सन्तान और उसकी जिम्मेदारी

नई पीढ़ी का निर्माण एक परम पवित्र और समाज सेवा का श्रेष्ठ साधन माना जाय, सन्तानोत्पादन को विलास का नहीं, राष्ट्रीय कर्तव्य की पूर्ति का एक दैर्घ्यपूर्ण कार्य माना जाय। इसके लिए माता-पिता अपनी शारीरिक, मानसिक और

आर्थिक तैयारी बहुत पहले से ही आरम्भ करें। जो गुण-दोष-माता-पिता में होते हैं वही सन्तान में आते हैं, इसलिए पति-पत्नी अपने सद्गुणों को ऊँची से ऊँची स्थिति तक बढ़ावें और अत्यन्त प्रेम एवं आत्मीयता से रहें। इसी एकता की उत्कृष्टता पर बालक का आन्तरिक विकास निर्भर रहता है। परस्पर द्वेष अविश्वास एवं कलह रखने वाले माता-पिता-दुष्टात्मा सन्तान को ही जन्म देते हैं। गर्भावस्था में माता की भावनाएँ जिस प्रकार की रहती हैं वे ही संस्कार बच्चे में आते हैं। बालकों की शिक्षा माता के गर्भ-काल से तो आरम्भ हो ही जाती है, वस्तुतः वह इससे भी बहुत पहले होती है। माता पिता के गुण कर्म, स्वभाव, स्वास्थ्य, मनोभाव, बौद्धिक स्तर का प्रभाव बालकों पर आता है। इसलिए सम्य पीढ़ी उत्पन्न करने की क्षमता विचार-शील पति-पत्नी को वैवाहिक जीवन के आरम्भ से ही प्राप्त करने में लग जाना चाहिए। अधिक ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए और दाम्पत्य जीवन को प्रत्येक दृष्टि से आदर्श बनाना चाहिए।

४५—सत्कार्यों का अभिनंदन

प्रतिष्ठा की भूख स्वाभाविक है। मनुष्य को जिस कार्य में बड़प्पन मिलता है वह उसी ओर झुकने लगता है। आज धन और पद को सम्मान मिलता है तो लोग उस दिशा में आकर्षित हैं। यदि यह मूल्यांकन बदल जाय और ज्ञानी, त्यागी एवं पराक्रमी लोगों को सामाजिक प्रतिष्ठा उपलब्ध होने लगे तो इस ओर भी लोगों का ध्यान जायगा और समाज में सत्कर्म करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। हमें चाहिए कि ऐसे लोगों को मान देने के लिए सार्वजनिक अभिनंदन करने के लिए समय-समय पर आयोजन करते रहें। मानपत्र भेंट करना, सार्वजनिक अभिनंदन, पदक-उपहार, समाचार पत्रों में उन सत्कर्मों की चर्चा, फोटो, चरित्र पुस्तिका आदि का प्रकाशन हम लोग कर सकते हैं। उन सत्कर्म कर्ताओं को इसकी इच्छा न होना ही उचित है, पर दूसरों को

प्रोत्साहन देने और वैसे ही अनुकरण की इच्छा दूसरों में जागृत हो, इस दृष्टि से सत्कर्मों के अभिनंदन की परम्परा प्रचलित करना ही चाहिए। ऐसे आयोजन हलके कारणों को लेकर या झठी प्रशंसा में न किये जायँ, अन्यथा ईर्ष्या द्वेष की दुर्भावनाएँ बढ़ेंगी। सम्य समाज का निर्माण करने के लिए धन एवं शक्ति को नहीं आदर्श को ही सम्मान मिलना चाहिए।

४६—सज्जनता का सहयोग

यदि मानवता का स्तर ऊँचा उठाना हो तो सज्जनता के साथ असहयोग की नीति अपनाई जानी चाहिए। सज्जनता को यदि सहयोग और प्रोत्साहन न मिले तो वह मुरझा जायगी। इसी प्रकार दुष्टता का यदि विरोध न किया गया तो वह भी दिन-दिन बढ़ती चली जायगी। इसलिए प्रत्येक सम्य नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपनी नीति ऐसी रखे जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष में सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि होती रहे और अनोति को निरुत्साहित होना पड़े।

परिस्थितिवश, यदि दुष्टता का पूर्ण प्रतिरोध संभव न हो, इसमें अपने लिए खतरा देखता हो तो कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि उनकी हाँ में हाँ मिलाने, सम्पर्क रखने या साथ में रहने से बचा जाय, क्योंकि इससे दूसरे प्रतिरोध करने वाले की हिम्मत टटती है और अनीति का पक्ष मजबूत होत है। संभव हो तो तीव्र संघर्ष, नहीं तो दुष्टता से असहयोग तो हर हालत में करने का साहस रखना ही चाहिए।

४७—नैतिक कर्तव्यों का पालन

नैतिक एवं नागरिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक स्वस्थ परम्पराओं का समर्थन, धर्म और नीति के आधार पर आचरण, शिष्ट व्यवहार, वचन का पालन, सहयोग और उदारता का अवलम्बन, ईमानदारी और श्रम उपार्जित कमाई पर सन्तोष, सादगी और सचाई का जीवन—ऐसे ही सद्गुणों को अपनाना चाहिए। मानवता की रीति नीति को

अपना कर हमें सदा सन्मार्ग पर ही चलना चाहिए भले ही इसमें अभावों, असुविधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़े।

आलसी नहीं बनना चाहिए और न समय का एक क्षण भी बर्बाद करना चाहिए। श्रम और समय का सदुपयोग यही सफलता के प्रधान माध्यम हैं। जुआ, चोरी, बेईमानी रिश्वत, मिलावट, धोखेवाजी, जैसे अवांछनीय उपायों से कमाई करके बड़ा आदमी बनने की अपेक्षा ईमानदारी अपना कर गरीबी का जीवन बिताना श्रेयष्कर समझना चाहिए। इसी अवस्था और गतिविधिको अपना कर हम अपना और समाज का उत्थान कर सकते हैं, यह भली प्रकार समझ लिया जाय।

४८—सहयोग और सामूहिकता

सहयोगपूर्वक, मिलजुल कर सम्मिलित कार्यक्रम को बढ़ाने को प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। आर्थिक क्षेत्र में सहयोग समितियों के आधार पर व्यापारिक औद्योगिक एवं उत्पादन के कार्यों को विकसित किया जाय। इसमें पूँजी की कठिनाई नहीं रहती। बड़े पैमाने पर कार्य होने से चीजें सस्ती एवं अच्छी तैयार होती हैं। इससे उत्पादकों को भी लाभ मिलता है। उपभोक्ताओं की भी सुविधा बढ़ती है। कार्यकर्ताओं में पारस्परिक प्रेम भी बढ़ता है, व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा सामूहिक लाभ एवं संगठन की भावनाएं विकसित होती हैं।

पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति हो सकती है। इसलिए सामूहिकता और संगठन के आधार पर संचालित प्रवृत्तियों में भाग लेना, योग देना और उन्हें बढ़ाना ही उचित है। सहयोग की नीति अपनाकर ही मानव जाति ने अब तक इतनी प्रगति की है। इन भावनाओं में शिथिलता आने से सामाजिक पतन और तीव्रता आने से उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है। इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम करते हुए सहयोग

एवं संगठन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित कर चाहिए।

४९—कंजूसी और विलासिता छूटे

धन का अनावश्यक संग्रह करने और देश मध्यम स्तर से अधिक ऊँचा रहन-सहन बनाने का निरुत्साहित किया जाना चाहिए। इससे व्यक्ति में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं और सामाजिक स्तर गिरता है। लोग कमावें तो सही पर उसका न्यूनतम उपयोग अपने लिए करके शेष को समाज के लिए लौटा दें। समाज में जब कि अनेक दीन-दुख, अभावग्रस्त और पिछड़े हुए व्यक्ति भरे पड़े हैं, अनेक समस्याएँ समाज को परेशान कर रही हैं। इन सब की उपेक्षा करके अपने लिए अनावश्यक संग्रह कर जाना मानवीय आदर्श के प्रतिकूल है।

सन्तान को सुशिक्षित और सुयोग्य बनाने लिए प्रयत्न करना उचित है पर उनको बैठे-ठाते व्याज भाड़े की कमाई पर निकम्मी जिन्दगी काट की व्यवस्था सोचना भारी भूल है। इससे संतान अहित ही होता है। कई व्यक्ति संतान न होने पर अपने धन को लोकहित के कामों में न लगाकर झूठी संतान ढूँढ़ते हैं, दूसरों के बच्चों को गोद लेकर अपनत्व का बहकावा खड़ा करते हैं और उनको जमा की हुई पूँजी देते हैं। ऐसी संकीर्णता तक बनी रहेगी समाज कभी पनपेगा नहीं।

कमाई को लोकहित में लगाने का गर्व और गौरव अनुभव कर सकने की प्रवृत्ति को जगाया जा आवश्यक है। लोग उदार और दानी बनेंगे तो सत्प्रवृत्तियों का उत्पन्न होना और बढ़ना संभव होगा। कंजूसी को घृणित पाप और विलासिता पाषाण हृदयों के योग्य निष्ठुरता माना, जाय ऐ लोक शिक्षण करना चाहिए।

५०—श्रम का सम्मान

श्रम का सम्मान बढ़ाया जाय। बौद्धिक श्रम करने वालों को धन और श्रम अधिक मिलत

और शारीरिक श्रमिकों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस दृष्टिकोण में परिवर्तन होना चाहिए। शारीरिक श्रम एवं श्रमिकों को भी उचित सम्मान मिले। राजा जनक ने हल जोतकर अपनी जीविका कमाने का आदर्श रखा था और नासिरुद्दीन बादशाह टोपियाँ सीकर तथा कुरान लिखकर अपना गुजारा करता था।

हमारे समाज में सफाई करने वाले, कपड़ा बुनने वाले जूते बनाने वाले, काड़े धोने वाले, इमारतें चिन्ने वाले, बोझा ढोने वाले, मजूरी करने वाले लोग इसीलिए नीच और अछत माने गये कि वे शारीरिक श्रम करते हैं। थोड़ा सा अपना बोझा ले चलने में बेइज्जती अनुभव करना आज के शिक्षित एवं सम्पन्न कहे जाने वाले लोगों का स्वभाव बन गया है। ऐसे लोगों की स्त्रियाँ भोजन बनाने, बर्तन माँजने, झाड़ू लगाने, बिस्तर

बिछाने जैसे कामों में बेइज्जती समझती हैं और इन छोटे-छोटे कामों के लिए नौकर चाहती हैं। अमीर लोग जूतों और कपड़े पहनाने का काम तक नौकरों से कराते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ किसी भी समाज के पतन का कारण होती हैं।

श्रम का सम्मान घटने से इस ओर लोगों की अरुचि हो जाती है। आराम तलबी को श्रेय मिले तो सभी वैसा बनना चाहेंगे। प्रगति से सहयोग मिलता है, पर उसको साकार रूप तो श्रम से ही मिलता है। इसलिए श्रम को प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए और सम्मान भी। हम में से हर व्यक्ति को शारीरिक दृष्टि से भी श्रमिक जैसी अपनी स्थिति और मनोभूमि बनानी चाहिए। सामाजिक प्रगति का बहुत कुछ आधार 'श्रम के सम्मान' पर निर्भर है।

—: इन कुरीतियों को हटाया जाय :—



पिछले दो हजार वर्ष के अज्ञान से भरे अन्धकार-युग में हमारी कितनी ही उद्योगी प्रथाएँ-रूढ़िवादिता में ग्रस्त होकर अनुपयोगी बन गई हैं। इन विकृतियों का सुधार कर हमें अपनी प्राचीन वैदिक सनातन स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न करना होगा, तभी भारतीय समाज का सुविकसित समाज जैसा रूप बन सकेगा। इस सम्बन्ध में हमें निम्न प्रयत्न करने चाहिए।

५१-वर्ण व्यवस्था का शुद्ध स्वरूप

ब्रह्माजी ने अपने चारों पुत्रों को चार कार्य-क्रम सौंपकर उन्हें चार वर्णों में विभक्त किया है। ज्ञान, बल, धन और श्रम यह चारों ही शक्तियाँ मानव समाज के लिए आवश्यक थीं। इनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वंशगत प्रयत्न चलता रहे और

उसमें कुशलता तथा परिष्कृति बढ़ती रहे। इस दृष्टि से इन चार कामों को चार पुत्रों में बाँटा गया था। चारों सगे भाई-भाई थे, इसलिये उनमें ऊँच-नीच का कोई प्रश्न न था। किसी का सम्मान महत्व और स्तर न न्यून था न अधिक। अधिक त्याग-तप करने के कारण, अपनी आन्तरिक महानता प्रदर्शित करने के कारण ब्राह्मण की श्रेष्ठता तो रही पर अन्य किसी वर्ग को हेय या निम्नस्तर का नहीं माना गया था।

आज स्थिति कुछ भिन्न ही है। चार वर्ण अगणित जातियों उपजातियों में बाँट गये और इससे समाज में भारी अव्यवस्था एवं फूट फैली। परस्पर एक दूसरे को ऊँचा-नीचा समझा जाने लगा। यह तक कि एक ही वर्ण के लोग अपनी उपजातियों में

नीच-ऊँच की कल्पना करने लगे । यह मानवीय एकता का प्रत्यक्ष अपमान है । व्यवस्थाओं या विशेषताओं के आधार पर वर्ण-जाति रहे, पर ऊँच-नीच की मान्यता को स्थान न मिले । सामाजिक विकास में भारी बाधा पहुँचाने वाले इस अज्ञान को जितनी जल्दी हटा दिया जाय उतना ही अच्छा है ।

५२-उपजातियों का भेदभाव हटे

चार वर्ण रहें पर उनके भीतर की उपजातियों की भिन्नता ऐसी न रहे जिसके कारण परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार भी न हो सके । प्रयत्न ऐसा करना चाहिए कि उपजातियों का महत्व गोत्र जैसा स्वल्प रह जाय और एक वर्ण के विवाह शादी पूरे उस वर्ण में होने लगे । ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत सनाढ्य गौड़, गौतम, कान्यकुब्ज, मालवीय, मारवाडी, सारस्वत, मैथिल, सरयूपारीण, श्रीमाली, पर्वतीय आदि अनेक उपजातियाँ हैं । यदि इनमें परस्पर विवाह शादी होने लगे तो इससे उपयुक्त वर-कन्या ढूँढ़ने में बहुत सुविधा रहेगी । अनेकों रूढ़ियाँ मिटेगी और दहेज जैसी हत्यारी प्रथाओं का देखते-देखते अन्त हो जायगा । इस दिशा में साहसपूर्ण कदम उठाये जाने चाहिए ।

एक-एक पूरे वर्ण की जातीय सभाएँ बनें, और उनका प्रयत्न इस प्रकार का एकीकरण ही हो । जातिगत विशेषताओं को बढ़ाने, विलगाव की भावनाओं को हटाने तथा उन वर्गों में फैली कुरीतियों का समाधान करने के लिए ये जातीय सभाएँ कुछ ठोस काम करने को खड़ी हो जायें तो सामाजिक एकता की दिशा में भारी मदद मिल सकती है । अच्छे लड़के और अच्छी लड़कियों के सम्बन्ध में जानकारीयाँ एकत्रित करना और विवाह सम्बन्धों में सुविधा उत्पन्न करना भी इन सभाओं का काम हो ।

५३-नर-नारी का भेद भाव

जातियों के बीच बरती जाने वाली ऊँच-नीच की तरह पुरुष और स्त्री के बीच रहने वाली ऊँच-

नीच की भावना निन्दनीय है । ईश्वर के दाहिने बाँये अङ्गों की तरह नर-नारी की रचना हुई है । दोनों का स्तर और अधिकार एक है । इसलिए सामाजिक न्याय और नागरिक अधिकार भी दोनों के एक होने चाहिए । प्राचीन काल में था भी ऐसा ही । तब नारी भी नर के समान ही प्रबुद्ध और विकसित होती थी । नई पीढ़ियों की श्रेष्ठता कायम रखने तथा सामाजिक स्तर की उत्कृष्टता बनाये रखने में उसका पुरुष के समान ही योगदान था ।

आज नारी की जो स्थिति है वह अमानवीय और अन्यायपूर्ण है । उसके ऊपर पशुओं जैसे प्रतिबन्धों का रहना और सामान्य नागरिक अधिकारों से वञ्चित किया जाना भारतीय धर्म की उदारता, महानता और श्रेष्ठता को कलंकित करने के समान है । पुरुषों के लिए भिन्न प्रकार की और स्त्रियों के लिए भिन्न प्रकार की न्याय व्यवस्था रहना अनुचित है । दाम्पत्य-जीवन में सदाचार का दोनों पर समान प्रतिबन्ध होना चाहिये । शिक्षा और स्वावलम्बन के लिए दोनों को समान अवसर मिलने चाहिए ।

पुत्र और पुत्रियों के बीच बरते जाने वाले भेदभाव को समाप्त करना चाहिए । दोनों को समान स्नेह, सुविधा और सम्मान मिले । पिछले दिनों जो अनीति नारी के साथ बरती गई है उसका प्रायश्चित्त यही हो सकता है कि नारी की शिक्षा और उसे स्वावलम्बी बन सकने जितनी योग्यता प्राप्त करने का अधिकाधिक अवसर प्रदान किया जाय । सरकार ने पिछड़े वर्गों को संविधान में कुछ विशेष सुविधाएँ दी हैं ताकि वे अपने पिछड़ेपन से जल्दी छुटकारा प्राप्त कर सकें । सामाजिक न्याय के अनुसार नारी को शिक्षा और स्वावलम्बन की दिशा में ऐसी ही विशेष सुविधा मिलनी चाहिए ताकि उनका पिछड़ापन अपेक्षाकृत जल्दी ही प्रगति में बदल सके ।

पर्दा प्रथा उस समय चली जब यवन लोग बहू बेटियों पर कुदृष्टि डालते और उनका अपहरण करते थे। अब वैसी परिस्थितियाँ नहीं रही तो पर्दा भी अनावश्यक होगया। यदि उसे जरूरी ही समझा जाय तो स्त्रियों की तरह पुरुष भी धूँधट किया करे। क्योंकि चारित्रिक पतन के सम्बन्ध में नारी की अपेक्षा नर-ही अधिक दोषी पाये जाते हैं।

५४--अश्लीलता का प्रतिकार

अश्लील साहित्य, अर्ध नग्न युवतियों के विकारोत्तेजक चित्र, गन्दे उपन्यास, कामुकता भरी फिल्में, गन्दे गीत वेश्यावृत्ति, अमर्यादित कामचेष्टाएँ, नारी के बीच रहने वाली शील संकोच मर्यादा का व्यक्ति-क्रम, दुराचारों की भोड़े ढङ्ग से चर्चा, आदि अनेक बुराइयाँ अश्लीलता के अन्तर्गत आती हैं। इनसे दाम्पत्य-जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और शरीर एवं मस्तिष्क खोखला होता है। शारीरिक व्यभिचार की तरह यह मानसिक व्यभिचार भी मानसिक एवं चारित्रिक संतुलन को बिगाड़ने में दावागिन का काम करता है। उसका प्रतिकार किया जाना चाहिए। ऐसे-चित्र-कलेण्डर पुस्तकें मूर्तियाँ तथा अन्य उपकरण हमारे घरों में न रहें जो अपरिपक्व मस्तिष्कों में विकार पैदा करें। शील और शालीनता की रक्षा के लिए उसकी विरोधी बातों को हटाया जाना ही उचित है।

५५--विवाहों में अपव्यय

संसार के सभी देशों और धर्मों के लोग विवाह शादी करते हैं पर इतनी फिजूलखर्ची कहीं नहीं होती जितनी हम लोग करते हैं। इससे आर्थिक संतुलन नष्ट होता है, अधिक धन की आवश्यकता उचित रीति से पूरी नहीं होसकती तो अनुचित मार्ग अपनाने पड़ते हैं। इन खर्चों के लिए धन जोड़ने के प्रयत्न में परिवार की आवश्यक प्रगति रुकती है अहंकार बढ़ता है तथा कन्याएँ माता-पिता के लिए भाररूप बन जाती हैं। विवाहों का अना-

वश्यक आडम्बरों से भरा हुआ और खर्चीला शौक बनाये रहना सब दृष्टियों से हानिकारक और असु-विधाजनक है।

दहेज की प्रथा तो अनुचित ही नहीं अनैतिक भी है। कन्या विक्रय वरविक्रय का यह भोंड़ा प्रदर्शन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रथा के कारण कितनी कन्याओं को अपना जीवन नारकीय बनाना पड़ता है और कितने ही अभिभावक इसी चिन्ता में घुल-घुलकर मरते हैं। इस हत्यारी प्रथा का जितनी जल्दी काला, मुँह होसके उतना ही अच्छा है।

विचारशील लोगों का कर्तव्य है कि वे इस दिशा में साहसपूर्ण जन नेतृत्व करें। उन रूढ़ियों को तिलांजलि देकर अत्यन्त सादगी के विवाह करें। परम्पराओं से डर कर—उपहास के भय से ही अनेक लोग साहस नहीं कर पाते, यद्यपि वे मन से इस फिजूलखर्ची के विरुद्ध होते हैं। ऐसे लोगों का मार्ग-दर्शन उनके सामने अपना उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है। युग निर्माण परिवार के लोग अपने ही विचारों के वर कन्या तथा परिवार ढूँढ़ें और सादगी के साथ आदर्श विवाहों का उदाहरण प्रस्तुत करें, इससे हिन्दू समाज की एक भारी समस्या हल हो सकेगी।

५६--बाल विवाह, अनमेल विवाह

बाल विवाहों की भर्त्सना की जाय और उनकी हानियाँ जनता को समझाई जायँ। स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, आगामी पीढ़ी एवं जीवन विकास के प्रत्येक क्षेत्र पर इनका बुरा असर पड़ता है। लड़की-लड़के जब तक गृहस्थ का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर संभालने लायक न हों तब तक उनके विवाह नहीं होने चाहिए। इस सम्बन्ध में जल्दी करना अपने बालकों का भारी अहित करना ही है। अशिक्षित और निम्न स्तर के लोगों में अभी भी बाल विवाह का बहुत प्रचलन है। उन्हें समझाने बुझाने या

कानूनी भय बता कर इस बुराई से विरत करना चाहिए। अनमेल विवाहों का भी रोका जाना और उनके विरुद्ध वातावरण बनाना आवश्यक है।

५७-भिक्षा व्यवसाय की भर्त्सना

समर्थ व्यक्ति के लिए भिक्षा माँगना उसके आत्म गौरव और स्वाभिमान के सर्वथा विरुद्ध है। आत्म गौरव खोकर मनुष्य पतन की ओर ही चलता है। खेद है कि भारतवर्ष में यह वृत्ति बुरी तरह बढ़ी है और उसके कारण असंख्य लोगों का मानसिक स्तर अधोगामी बना है।

जो लोग सर्वथा अपंग असमर्थ हैं, जिनके परिजन या सहायक नहीं उनकी आजीविका का प्रबन्ध सरकार को या समाज के दान-संस्थानों को स्वयं करना चाहिए, जिससे इन अपंग लोगों को बार-बार हाथ पसार कर अपना स्वाभिमान न खोना पड़े और बचे हुए समय में कोई उपयोगी कार्य कर सकें। अच्छा हो ऐसी अपंग संस्थाएँ जगह-जगह खुल जायँ और उदार लोग उन्हीं के माध्यम से वास्तविक दीन दुखियों की सहायता करें।

बहानेबाज समर्थ लोगों को भिक्षा नहीं देनी चाहिए। इससे आलस और प्रमाद बढ़ता है, जनता को अनावश्यक भार सहना पड़ता है और आडम्बरी लोग दुर्गुणों से ग्रस्त होकर तरह-तरह से जनता को ठगते एवं परेशान करते हैं। भजन का उद्देश्य लेकर चलने वालों के लिए भी यही उचित है कि वे अपनी आजीविका स्वयं कमायें और बाकी समय में भजन करें।

५८-मृत्यु भोज की व्यर्थता

किसी के मरने के बाद उस घर में दो सप्ताह के भीतर विवाह शादियों जैसी दावत का आयोजन होना दिवंगत व्यक्ति के प्रति अपमान है। दावतें तो खुशी में उड़ाई जाती हैं। मृत्यु को शोक का चिन्ह मानते हैं तो फिर दावतों का आयोजन किस उद्देश्य से? मृतक के मित्रों और संबंधियों के लिए भी यही उचित है कि इस क्षतिग्रस्त परिवार की कोई

सहायता न कर सकते हों तो कम-से-कम दावतों की सलाह देकर उसका आर्थिक अहित तो न करें।

मृतक की आत्मा को शान्ति देने के लिए धार्मिक कृत्य कराये जायँ, सहानुभूति प्रकट करने वाले लोग यदि दूर से आये हैं तो वे भी ठहरें, घर, परिवार और सम्बन्धी लोग श्राद्ध के दिन एक चौके में खायँ। यहाँ तक तो बात समझ में आती है। पर बड़े-बड़े मृत्यु भोज सर्वथा असंगत हैं। उनकी न कोई उपयोगिता है और न आवश्यकता। ऐसे शुभ कार्यों में जिनसे मानवता की कोई सेवा होती हो श्राद्ध के उपलक्ष में कितना ही बड़ा दान किया जा सकता है, वही सच्ची श्रद्धा का प्रतीक होने से सच्चा श्राद्ध कहा जा सकता है।

५९-जेवरों में धन की बर्बादी

जेवरों में धन की बर्बादी प्रत्यक्ष है, जो पैसा किसी कारोबार में या ब्याज पर लगने से बढ़ सकता था वह जेवरों में कैद होने पर दिन-दिन घिसता और कैद पड़ा रहता है। टूट-फूट, मजूरी, टाँका, बट्टा में काफी हानि सहनी पड़ती है। पहनने वाले का अहंकार बढ़ता है। दूसरों में ईर्ष्या जगती है। चोर लुटेरों को अवसर मिलता है। जिस अंग में उन्हें पहनते हैं वहाँ दबाव और अस्वच्छता बढ़ने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। चमड़ी कड़ी पड़ जाती है और पसीने के छेद बन्द होते हैं। नाक के जेवरों से तो सफाई में भी अड़चन पड़ती है। विवाह शादियों के अवसर पर तो वह एक समस्या बन जाते हैं। दहेज जैसी हानिकारक प्रथा का मूल भी जेवरों में रहता है। लड़की वाले जब तक जेवरों की आवश्यकता अनुभव करेंगे तब तक लड़के वाले दहेज भी माँगते रहेंगे। जेवरों का शौक हर दृष्टि से हानिकारक है इसे छोड़ने में ही लाभ है।

६०-भूत-पलीत और बलि प्रथा

भूत-पलीतों का मानसिक विभ्रम पैदा करके स्याने दिवाने और ओझा लोग भोली जनता का मानसिक और आर्थिक शोषण बुरी तरह करते हैं।

मानसिक रोगों, शारीरिक कष्टों एवं दैनिक जीवन में आती रहने वाली साधारण सी बातों को भूत की कर्तुत बना कर व्यर्थ ही भोले लोग भ्रमित होते हैं। उन भ्रम का इतना घातक प्रभाव पड़ता है कि कई बार तो उस प्रकार के विश्वास से जीवन-संकट तक उपस्थित हो जाते हैं।

धर्म-ग्रन्थों में जिन देवी-देवताओं का वर्णन है उनकी संख्या भी पर्याप्त है। पर उतने से भी संतोष न करके लोगों ने जाति-जाति के, वंश वंश के, गाँव-गाँव के, इतने अधिक देवता गढ़ लिये हैं कि आश्चर्य होता है। उन पर मुर्गें, अंडे, भैंसे, बकरे, सुअर, आदि चढ़ाते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि दया

और प्रेम के लिए बने हुए देवता अपने ही पुत्र पशु-पक्षियों का खून पीवें।

हमें एक परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिए। और इन भूत-पत्नीतों के भ्रम जंगल से सर्वथा दूर रहना चाहिए। जन-समाज को भी इससे बचाना चाहिए।

और भी अनेकों कुरीतियाँ विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में पाई जाती हैं। हानिकारक और अनैतिक बुराइयों का उन्मूलन करना ही श्रेयस्कर है। सभ्य समाज को विवेकशील ही होना चाहिए और इन उपहासास्पद विडम्बनाओं से जल्दी ही अपने को मुक्त कर लेना चाहिए। ★ ★

* सत्साहित्य सृजन-युग की एक महान आवश्यकता *

—:—*—:—

व्यक्ति और समाज के निर्माण में सत्साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। किसी देश के साहित्य की स्थिति को देखते हुए यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ के लोगों का चरित्र कैसा होगा। विचारों का निर्माण सत्संग और स्वाध्याय से ही होता है। साहित्य की शक्ति स्थायी और प्रवचनों की अस्थायी रहती है। इसलिए साहित्य एवं उसके स्वाध्याय को प्रथम स्थान दिया गया है। युग-निर्माण योजना को सफल बनाने के लिए भी देश की विशाल जन संख्या के देखते हुए व्यापक परिणाम में सत्साहित्य प्रस्तुत करने एवं उसे जन साधारण तक पहुँचाने के लिए हमें एक विशाल एवं सुव्यस्थित तंत्र विकसित करना पड़ेगा जो राष्ट्र की बढ़ती हुई ज्ञान-क्षुधा को तृप्त कर सके। विचार क्रांति के लिए यह सत्साहित्य हमारा प्रथम शस्त्र हो सकता है।

योजना का आरम्भ भारतवर्ष से और विशेषतया हम अपने से सम्बन्ध हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठावान् अखण्ड-ज्योति परिवार से कर रहे हैं। इसलिए आरम्भिक विचार भी इसी सीमित क्षेत्र के अनुरूप

दिया जा रहा है, पर कुछ ही दिनों में इसके विश्व-व्यापी क्षेत्र और समस्त भाषा, धर्म देश और जातियों को दृष्टि में रखते हुए इसी व्यवस्था तन्त्र को विकसित करना पड़ेगा। समस्त मानव जाति को नीति, धर्म, सदाचार विवेक और कर्तव्य पालन के लिए प्रेरित करने में साहित्य भी वहीं की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करना पड़ेगा।

इसके लिए निम्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

६१-लेखकों और पत्रकारों से अनुरोध

देश की विभिन्न भाषाओं में जो लेखक और कवि आज कल लेखन कार्य में लगे हुए हैं, उनसे सम्पर्क बना कर यह प्रेरणा दी जाय कि वे युग-निर्माण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा करें। इसी प्रकार जो पुस्तक प्रकाशक एवं पत्रकार साहित्य प्रकाशन का कार्य हाथ में लिए हुए हैं उन्हें मानव-जीवन में प्रकाश भरने वाला साहित्य छापने की प्रेरणा की जाय। समाचारपत्र एवं पुस्तक विक्रेताओं से भी यही अनुरोध किया जाय

कि उन वस्तुओं के विक्रय में विशेष ध्यान दें जो जन कल्याण के लिए उपयोगी एवं आवश्यक हैं। इसी प्रकार वर्तमान साहित्य क्षेत्र में लगे हुए लोगों से सम्पर्क स्थापित करके उन्हें युग की आवश्यकता पूर्ण करने की प्रेरणा दी जाय।

६२-युग-साहित्य के नव निर्माता

इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में विशेष मनोयोग-पूर्वक युग की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए मिशनरी ढंग से काम करने वाले लेखकों एवं कवियों का एक विशेष वर्ग तैयार किया जाय जो साहित्य-निर्माण कार्य को अपना प्रधान सेवा-साधन बनाकर तत्पर 1-पूर्वक इसी कार्य में लग सके। ऐसे अनेक व्यक्ति मौजूद हैं जिनमें इस प्रकार की प्रतिभा और सेवा भावना पर्याप्त मात्रा में मौजूद है पर आवश्यक साधन, मार्ग दर्शन एवं प्रोत्साहन न मिलने से वे अविकसित ही पड़े रहते हैं। अपना प्रयत्न ऐसे लोगों को संगठित एवं विकसित करने का हो। इस अभिरुचि एवं योग्यता के लोगों को ढूँढ़ना, उन्हें इकट्ठा करना और आवश्यक प्रशिक्षण देकर इस योग्य बनाना हमारा काम होगा कि वे कुछ ही दिनों में युग-निर्माता साहित्यकारों को एक भारी आवश्यकता की पूर्ति कर सकें। 'अखण्ड-ज्योति परिवार' में इस प्रतिभा के जो लोग होंगे उन्हें सर्व प्रथम तैयार करेंगे और उनको आवश्यक शिक्षा देने के लिए जल्दी ही शिविरों की श्रृंखला आरम्भ करेंगे।

६३-संगोष्ठित रचनाएँ और उनका प्रकाशन

इन नवीन लेखकों की रचनाएँ देश में आजकल विभिन्न भाषाओं में छाने वाले प्रायः सात हजार पत्र-पत्रिकाओं में छाने लगे इसके लिए पत्रकारों से विशेष सम्पर्क बनाने और उन्हें आवश्यक प्रेरणा देने का विचार है। इसके लिए संभवतः एक देश व्यापी दौरा भी करना पड़े। प्रयत्न यह होना चाहिए कि देश भर के पत्रों में नैतिक पुनरुत्थान की विचार धारा को महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगे।

ऐसा भी प्रबन्ध हो सकता है कि नवीन लेखकों

की रचनाएँ केन्द्रीय कार्यालय में मँगाली जाया करें और यहाँ उनका संशोधन करके उन्हें सम्पादकों के पास भेजा जाया करे। कौन रचना किस पत्र के लिए उपयुक्त रहेगी उसका निर्णय भी केन्द्रीय कार्यालय से सुविधा पूर्वक हो सकेगा, इसलिए ऐसी व्यवस्था भी करनी पड़ेगी।

६४-प्रत्येक भाषा में प्रकाशन

युग-निर्माण के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त साहित्य प्रकाशित करने के लिए देश की प्रत्येक भाषा में प्रकाशक उत्पन्न किये जायें, जो व्यवसाय ही नहीं मिशन भावना भी अपने कार्यक्रम में सम्मिलित रखें और इसी दृष्टि से अपना कार्यक्रम चलावें। देश में १४ भाषाएँ राष्ट्र भाषा का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। पन्द्रहवीं अंग्रेजी है। इन सभी भाषाओं में युग-निर्माण साहित्य स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित और प्रचारित होने लगे, उसके लिए आवश्यक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

६५-अनुवाद कार्य का विस्तार

जो व्यक्ति कई भाषाएँ जानते हैं वे एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा में अनुवाद करें और उस भाषा के प्रकाशकों के लिए एक बड़ी सुविधा उत्पन्न करें। भाषाओं की भिन्नता के कारण उच्च कोटि का ज्ञान सीमाबद्ध न पड़ा रहे इसलिए यह अनुवाद कार्य भी स्वतन्त्र लेखन से कम महत्वपूर्ण नहीं है। संसार के महान मनीषियों ने जो ज्ञान अपनी-अपनी भाषाओं में प्रस्तुत किया है उसका लाभ सीमित क्षेत्र में न रहकर समस्त भाषा-भाषी लोगों के लिए उपलब्ध हो ऐसा प्रयास करने से ही एक बड़ी आवश्यकता पूर्ण हो सकेगी। हिन्दी भाषा में परिवार के साहित्यकार जो उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत करें, उनका अनुवाद जल्दी ही देश की १५ भाषाओं में हो जाया करे तो विचार विस्तार का क्षेत्र बहुत व्यापक हो सकता है। आगे चलकर तो यही प्रक्रिया विश्वव्यापी बननी है। संसार के किसी भी कोने में किसी भी भाषा में छपे उत्कृष्ट विचार

विश्व भर की जनता को उपलब्ध हो सके ऐसे प्रकाशन तन्त्र का विकास होना आवश्यक है और वह हम करेंगे भी।

६६-पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता

युग-निर्माण लक्ष्य में निर्धारित प्रेरणाओं को विशेष रूप से गतिशील बनाने वाले पत्र-पत्रिकाओं की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता है। जीवन को सीधा स्पर्श करने वाले ऐसे अगणित विषय हैं जिनके लिए अभी कोई शक्तिशाली विचारकेन्द्र दृष्टिगोचर नहीं होते। नारी-समस्या, शिशु-पालन, स्वास्थ्य, परिवार-समस्या, अर्थ-साधन, गृह-उद्योग, कृषि, पशु-पालन, समाज शास्त्र, जातीय समस्याएँ, अध्यात्म, धर्म, राजनीति, कथा-साहित्य, बाल-शिक्षण, मनोविज्ञान, मानवता, सेवा धर्म, सदाचार आदि कितने ही विषय ऐसे हैं जिन पर नाम मात्र का साहित्य है और पत्र-पत्रिकाएँ तो नहीं के बराबर हैं। आज जो पत्र निकल रहे हैं वे एक खास ढर्रे के हैं, उनमें न तो मिशिनरी जोश है और न वैसा कार्यक्रम ही लेकर वे चलते हैं। अब ऐसे पत्र-पत्रिकाओं को बड़ी संख्या में प्रकाशित होना चाहिए जो मानव जीवन के हर पहलू पर प्रकाश उत्पन्न कर सकें।

योजना के अनुरूप कम-से-कम सौ पत्र तो इन विषयों पर तुरन्त निकलने चाहिए। जिनमें आवश्यक योग्यता और उत्साह हो उन्हें इसके लिए प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।

६७-प्रकाशन की सुगठित शृङ्खला

पुस्तक प्रकाशकों की एक सुगठित ऐसी शृङ्खला होनी चाहिए जो एक-एक विषय पर परिपूर्ण साहित्य तैयार करे। शृङ्खला से संबद्ध प्रकाशक एक दूसरे से अपनी पुस्तकों का परिवर्तन कर लिया करें। इस प्रकार हर प्रकाशक के पास प्रत्येक विषय का प्रचुर साहित्य जमा हो जाया करेगा। अपनी निजी दुकान चला कर, फेरी से अथवा विज्ञापन आदि से जैसे भी उपयुक्त हो उस साहित्य का विक्रय

किया जाया करे। इस प्रकार एक विषय का प्रकाशक पारस्परिक सहयोग के आधार पर सभी विषयों की पुस्तकों का प्रचारक बन सकेगा। अनेक वस्तुएँ पास में होने से विक्रय सम्बन्धी असुविधा भी न रहेगी।

६८-समाचार पत्रों द्वारा जन-नेतृत्व

स्थानीय समस्याओं के लिए छोटे-छोटे साप्ताहिक पत्र भी हर शहर में चल सकते हैं। इन्हें किस प्रकार चलाया जाय, इसकी आवश्यक जानकारी इस विषय में दिलचस्पी रखने वाले लोगों को उपलब्ध हो। जन-नेतृत्व करने और सामयिक जन-समस्याओं को प्रकाश में लाने के लिए ऐसे समाचार पत्रों की भी आवश्यकता है। जहाँ सुविधा हो वहाँ दैनिक भी चल सकते हैं। समाचार पत्रों का प्रकाशन, मासिक विचार साहित्य से सर्वथा भिन्न प्रकार का कार्यक्रम है। इसलिए इस सम्बन्ध की जो विशेष बारीकियाँ हैं उन्हें भी विस्तारपूर्वक जानने की आवश्यकता पड़ेगी, जो इस संदर्भ में आवश्यक है। यह जानकारी उपयुक्त व्यक्तियों को मिल सके इसकी सुविधा हमें उत्पन्न करनी चाहिए।

६९-युग निर्माण प्रेस

प्रायः प्रत्येक नगर में एक-एक युग-निर्माण प्रेस होना चाहिए, जिसके माध्यम से उसके संचालक अपनी रोजी रोटी सम्मान पूर्वक कमा लिया करें और साथ ही उस केन्द्र से आस-पास के क्षेत्र में भावनाओं के विस्तार का कार्यक्रम चलता रहा करे। छोटे प्रेस न्यूनतम ४ हजार की पूँजी से भी चल सकते हैं। साधन सम्पन्न प्रेसों के लिए अधिक पूँजी उपलब्ध करनी पड़ेगी।

व्यक्तिगत पूँजी से या सहयोग्य-समितियाँ गठन करके यह कार्य आरम्भ किये जा सकते हैं। आम तौर से नये कार्य कर्ताओं को निजी अनुभव तो होता नहीं, उस व्यवसाय में लगे हुए लोग बारीकियों को बताते नहीं, इसलिए ऐसे कार्यक्रम प्रायः असफल हो जाते हैं। पर जब उन्हें साझोपाज्ञ

शिक्षण उपलब्ध हो जायगा तो फिर किसी कठिनाई की संभावना न रहेगी और ऐसे प्रेस प्रत्येक नगर में चलने लगेंगे। इन केन्द्रों से विचार क्रान्ति में भारी योगदान मिल सकता है।

७०—कविताओं का निर्माण और प्रसार

युग-निर्माण विचार धारा के उपयुक्त भावना पूर्ण कविताएँ प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में लिखी जायँ। उन्हें सस्ते मूल्य पर छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में छापा जाय। जीवन के हर पहलू को स्पर्श करने वाली प्रेरणाप्रद कविताएँ सर्वत्र उपलब्ध हों जिससे गायन सम्बन्धी जन-मानस की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। लोक गीतों में प्रेरणा भर देने का कार्य हमें पूरा करना चाहिए। गायन का कोई क्षेत्र ऐसा न बचे जहाँ उत्कर्ष की ओर ले जाने वाली कविताएँ गूँज न रही हों। स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत मङ्गल अवसर की आवश्यकता के अनुरूप

लिखे-छापे और उन्हें सिखाये जाने चाहिए। उच्च साहित्य क्षेत्र से लेकर हल जोतते हुए किसानों तक के गाये जाने योग्य प्रेरणाप्रद कविताओं की भारी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति सुसंगठित योजना बना कर की ही जानी चाहिए। यह अभाव किसी भी क्षेत्र में, किसी भी भाषा में रहने न पावे। इस रचनात्मक कार्य को पूरा किये बिना धरती पर स्वर्ग लाने का स्वप्न साकार न हो सकेगा। इसके लिए कवि-हृदय साहित्यकारों को बहुत कुछ करना है।

साहित्य-निर्माण की उपरोक्त दस योजनाएँ सब दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इनमें भाग लेने वाले अपना जीवन धन्य बनावेंगे और देश, जाति की भी बहुत बड़ी सेवा करेंगे। प्रतिभावान लोगों को इस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए हम भावना-पूर्वक आमंत्रण भेजते हैं, उन्हें आवश्यक मार्ग-दर्शन मिलेगा और सहयोग भी।

—S*S:-कला और उसका सदुपयोग:-S*S—

मानव अन्तःकरण को पुलकित एवं भावविभोर करने की क्षमता कला में रहती है। कला का वासना को भड़काने में इन दिनों बड़ा हाथ रहा है। अब इस महान शक्ति को हमें जीवन निर्माण एवं समाज रचना की महान प्रक्रिया में लगाना होगा। कला शाश्वत है। उसमें दोष कुछ नहीं वरन् मानव अन्तःकरण का सीधा स्पर्श कर सकने की क्षमता से सम्पन्न होने के कारण वह आवश्यक है और अभिवन्दनीय है। विरोध का एक मात्र तथ्य है कला का दुरुपयोग, इसे रोका जाना चाहिए और इस सृजनात्मक शक्ति को जन मानस की श्रेष्ठता की ओर प्रेरित करने के लिए प्रयुक्त करना चाहिए।

इस संदर्भ में नीचे दस सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं—

७१—वक्तृत्व कला का विकाश

बोलना संसार की सबसे बड़ी कला है। व्यक्ति-

गत जीवन में जन सहयोग का लाभ प्राप्त करना मुख्यतया मनुष्य को बोलने, बात करने की शैली पर निर्भर है। मीठा बोलने से पराये अपने हो जाते हैं और कटु भाषण से अपने पराये बनते हैं। जीवन की प्रगति में उतनी और कोई बात सहायक नहीं होती जितनी शिष्ट, मधुर, उदार और परिमार्जित वाणी। इसी प्रकार सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त करने का भी बहुत कुछ श्रेय विधिवत् वक्तृत्व पर ही निर्भर रहता है। अपने पक्ष को ठीक प्रतिपादित करने में वही व्यक्ति सफल होता है जिसका भाषण-शैली परिमार्जित है। युग-निर्माण के लिए प्रधानतया हम सबको इसी शस्त्र का पग-पग प उपयोग करना पड़ेगा। इसलिए उमका अभ्यास भी होना ही चाहिए। व्यक्तिगत वार्तालाप में औ जन समूह के सामने भाषण देने में किन तथ्यों का ध्यान रखना और किन बातों का अभ्यास कर

आवश्यक है, इसका प्रशिक्षण अखण्ड-ज्योति के सदस्यों को विधिवत् मिलना चाहिए। अन्यथा बौद्धिक क्रान्ति का यह विशाल अभियान किस प्रकार व्यापक बन सकेगा ?

७२-गायकों का संगठन

भाषण की भाँति ही गायन का भी महत्व है। विधिवत् गाया हुआ गायन मनुष्य के हृदय को पुलकित कर देता है। भावनाओं का तरंगित करने की उतनी ही शक्ति गायन में रहती है जितनी विचारों को बदलने की भाषण में रहती है। गायकों को संगठित करना चाहिए और उन्हें युग-निर्माण भावनाओं के अनुरूप कविताएँ सीखने तथा गाने की प्रेरणा देनी चाहिए।

जहाँ-तहाँ भजन मंडलियाँ और कीर्तन मंडलियाँ अपने बिखरे रूप में पाई जाती हैं, उन्हें संगठित करना अभीष्ट होगा। व्यक्तिगत रूप से जो लोग गाया करते हैं उन्हें भी अपनी कला द्वारा जन समूह को लाभ पहुँचाने की प्रेरणा करनी चाहिए। सामूहिक संगीत कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर होता रहे और उनमें उत्कर्ष की भावनाओं की प्रधानता रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

७३-संगीत शिक्षा का प्रबंध

गाने बजाने की क्रमबद्ध शिक्षण व्यवस्था न होने से ऐसे लोगों की कला अविकसित ही पड़ी रहती है, जिनके गले मधुर हैं और लोगों को प्रभावित करने की प्रतिभा विद्यमान है। साधारण गायन और मामूली बाजे बजाने का शिक्षण कोई बहुत बड़ा काम नहीं है। उसे मामूली जानकार भी कर सकते हैं। खंजरी, करताल, मजीरा, ढोलक, चिमटा, इकतारा जैसे बाजे लोग बिना किसी के सिखाये-देखा-देखी ही सीख जाते हैं। यदि उनकी व्यवस्थित शिक्षण व्यवस्था हो तो उसका लाभ अनेकों को आसानी से मिल सकता है और नये गायक तथा बजाने वाले पैदा हो सकते हैं।

७४-चित्र कला का उपयोग

सजावट की दृष्टि से चित्रों का प्रचलन अब बहुत बढ़ गया है। कमरों में, पुस्तकों में, पत्र-पत्रिकाओं में, दकानों पर, कलेण्डरों में, विज्ञापनों में सर्वत्र चित्रों का बाहुल्य रहता है। इनमें से अधिकांश कुरुचिपूर्ण, गंदे, अश्लील, किम्बदन्तियों पर आधारित, निरर्थक एवं प्रेरणाहीन पाये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि महापुरुषों, त्यागियों, लोक सेवियों और आदर्श चरित्र व्यक्तियों के तथा प्रेरणाप्रद घटनाओं के चित्रों का बाहुल्य हो और उन्हें देखकर मन पर श्रेष्ठता जागृत करने वाले संस्कार पड़ें। इस परिवर्तन में ऐसे चित्रकारों का सहयोग अभीष्ट होगा जो अपनी कला से जन मानस में ऊर्ध्वगामी भावनाओं का संचार कर सकें। ऐसे भावपूर्ण चित्र तथा प्रेरणाप्रद आदर्श वाक्यों, सूक्तियों तथा अभिवचनों के अक्षर भी कलापूर्ण ढंग से चित्र जैसे सुन्दर बनाये जा सकते हैं। अनीति के विरोध में व्यंग चित्रों की बड़ी उपयोगिता है। कलाकारों को ऐसे ही चित्र बनाने चाहिए और जन मानस को बदल डालने में महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिये।

७५-चित्र प्रकाशन की महत्ता

उपरोक्त प्रकार के चित्रों का प्रकाशन व्यवसाय बड़े पैमाने पर आरंभ करके और उन्हें अधिक सस्ता एवं अधिक सुन्दर बनाकर समाज की बड़ी सेवा की जा सकती है। चित्र प्रकाशन जहाँ एक लाभदायक व्यवसाय है वहाँ वह प्रभावोत्पादक भी है। चित्रकारों से चित्र बनवाने, उन्हें छापने, विक्रेताओं के पास पहुँचाने, बेचने के काम में अनेक व्यक्तियों को रोजी भी मिल सकती है। इस व्यवसाय के आरंभ करने वाले कितने ही आदमियों को रोजी देने, समाज में भावनाएँ जागृत करने एवं अपना लाभ कमाने का श्रेयस्कर व्यापार कर सकते हैं। साहित्य की ही भाँति जन भावनाओं के जागृत करने में चित्रकला भी उपयोगी है।

७६-प्रदर्शनियों का आयोजन

प्रदर्शनियों के जगह-जगह आयोजन किये जायें। वर्तमान काल की सामाजिक एवं नैतिक बुराइयों के कारण होने वाले दुष्परिणामों के बड़े-बड़े चित्र बनाकर उन्हें सुसज्जित रूप से किसी कमरे या टेण्ट में लगाया जाय और दर्शकों को चित्रों के आधार पर वस्तु स्थिति समझाई जाय तो यह एक बड़ा प्रभावशाली तरीका होगा। बुराइयों की बढ़ोतरी की चिन्ताजनक स्थिति से भी जनता को अवगत रखा जाना आवश्यक है। इसके लिये पत्रों में छपे हुये समाचारों या रिपोर्टों के उद्धरण छोटे अक्षरों में चित्रों की भाँति ही सुसज्जित बनाकर प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

बुराइयों के प्रति क्षोभ और घृणा, सतर्कता, विरोध और संघर्ष की भावना उत्पन्न करने के लिए जिस प्रकार चित्रों और वाक्य-पटों का प्रदर्शन आवश्यक है, इसी प्रकार अच्छाइयों की बढ़ती हुई प्रगति एवं घटनाओं की जानकारी कराने वाले चित्र एवं वाक्यपट इन प्रदर्शनियों में रहें जिससे सेवा, त्याग, प्रेम, उदारता की भावनाओं को चरितार्थ करने, सन्मार्ग पर चलने और सत्कर्म करने के लिये प्रेरणा मिले। इस प्रकार की प्रदर्शनियाँ मेले उत्सवों पर तथा अन्य अवसरों पर करते रहने के लिये व्यवस्थित योजना बनाकर चला जाय तो इससे भावनाओं के उत्कर्ष में बड़ी सहायता मिलेगी।

७७-अभिनय और लीलाएँ

भगवान राम और कृष्ण की लीलाएँ जगह-जगह धूम-धाम से होती हैं। इनके व्यवस्थापक ऐसा प्रयत्न करें कि उनमें से निरर्थक एवं मनोरंजक अंश कम करके शिक्षा एवं सन्मार्ग के प्रेरणा उत्पन्न करने वाले अंश बढ़ा दें। उपस्थित जनता को समझाने को भी सुधरा हुआ ढंग काम में लाया जाय।

जगह-जगह अगणित मेले-ठेले होते हैं, उनके पीछे कोई न कोई इतिहास या परंपरा होती है। इसको किसी लीला, अभिनय, एकांकी, प्रदर्शनी,

गायन, संगीत पोस्टर, आदि के रूप से उपस्थित किया जाय, जिससे उन मेलों में आने वाली जनता उन आयोजनों के मूल कारणों को समझे और उस मेले का कुछ भावनात्मक लाभ भी उठाये। राम-लीला आदि में अभिनय करने वाले या उनका संचालन करने में कुशल लोग अपने-अपने क्षेत्रों में ऐसे आयोजनों का प्रबन्ध कर सकते हैं। इससे मेलों का आकर्षण भी बढ़ेगा और प्रचार कार्य की भी श्रेष्ठ व्यवस्था बनेगी।

७८-नाटक और एकाङ्की

सामूहिक खुले लीला अभिनयों की भाँति ही उनका सुधरा और अधिक सुंदर रूप नाटक मंडलियों के रूप में बनता है। रास लीलाओं का वर्तमान रूप वैसा ही है। बड़ी नाटक मण्डलियों की बात यहाँ नहीं की जा रही है। थोड़े से उपकरणों का रंगमंच बनाकर अनेक महापुरुषों के जीवनो की श्रेष्ठ घटनाओं, ऐतिहासिक तथ्यों तथा सामाजिक स्थिति का चित्रण करने वाले नाटकों की व्यवस्था करके उन्हें साधारण जनता के मनोरंजन का माध्यम बनाया जा सकता है। ऐसी मंडलियाँ व्यवसायिक आधार पर गठित हो सकती हैं। जन स्थिति के अनुरूप खर्च वसूल करके उन्हें सस्ता और लोक प्रिय बनाया जा सकता है।

छोटे-मोटे आयोजनों में एकांकी अभिनय भी बड़े रोचक और मनोरंजक होते हैं। विद्यालयों में एकांकी अभिनय बड़े सफल होते हैं, उन्हें दूसरे उत्सव आयोजनों पर भी प्रदर्शित किया जा सकता है। ऐसे एकांकी एवं नाटक लिखे और प्रदर्शित किए जाने चाहिए जो नैतिक एवं विचार क्रान्ति में आवश्यक योगदान दे सकें।

७९-कला के वैज्ञानिक माध्यम

विज्ञान के माध्यम से कुछ कलात्मक माध्यमों का इतना विकाश हो गया है कि उनका उपयोग तो जनता करती है पर निर्माण ऊँचे स्तर पर ही हो सकता है। ग्रामोफोन के रिकार्ड और सिनेमा फिल्में इसी प्रकार के दो माध्यम हैं, जिनने जन

मानस पर भारी प्रभाव डाला है। ग्रामोफोन का प्रचलन तो रेडियो के विस्तार से घट गया है पर उत्सवों के अवसरों पर लाउडस्पीकों द्वारा रिकार्ड अभी भी बजाये जाते हैं और उन्हें लाखों व्यक्ति प्रतिदिन सुनते हैं। इसी प्रकार देश भर में हजारों सिनेमा घर हैं जिनमें लाखों फिल्में चल जाती हैं। इन्हें भी करोड़ों व्यक्ति हर साल देखते हैं और जैसे भी संस्कार उन दृश्यों में होते हैं उन्हें देखने वाले ग्रहण करते हैं। मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करने के लिये विज्ञान की यह दो बड़ी कलात्मक देन हैं। पर खेद इसी बात का है कि इनका दुरुपयोग ही अधिक होता है। यदि इनका सदुपयोग हो सका होता तो जन जागृति एवं चरित्र-निर्माण में भारी योग मिला होता।

यदि इनका कभी हम लोगों को उपयोग करना ही पड़े तो उतने ही भाग को प्रयोग में लाना चाहिए जो हानिकारक नहीं है। अपने घरों पर लाउडस्पीक से रिकार्ड बजवाने हों तो केवल अच्छी भावना वाले गायन ही चुनने चाहिए जिससे गंद गीतों द्वारा दुर्भावनाएँ फैलाने के पाप में हम भी भागीदार न बनें। कोई सज्जन ऐसा प्रयत्न भी कर सकते हैं कि केवल भावनात्मक रिकार्ड वाले लाउडस्पीक रखें और उन्हें दूसरों की अपेक्षा कुछ कम दाम पर किराये पर दिया करें। फिल्म देखने हों तो पहले यह जान लेना चाहिए कि उसमें दूषित अंश अधिक तो नहीं हैं। स्वयं तथा अपने मित्रों, परिवार एवं संबंधियों को गंदे चित्र देखने की सहमति नहीं देनी चाहिये।

यों छोटे घरेलू फिल्म प्रोजेक्टर, मेजिक लालटन, टेपरिकार्ड आदि द्वारा भी छोटे जन समूह का कुछ मनोरंजन हो सकता है। विज्ञान के इन माध्यमों से भी कुछ मनोरंजन हो सकता है, जहाँ इनकी उपयोगिता से भी काम लिया जा सकता है।

५०—कम्पनियों द्वारा रिकार्ड और फिल्मों का निर्माण

विज्ञान द्वारा कला का विकास करने के (१) रिकार्ड और (२) फिल्म इन दोनों का निर्माण-कार्य बहुत पूँजी और बहुत अनुभव के आधार पर

ही हो सकना संभव है। अखण्डज्योति परिवार वर्तमान सदस्यों में ऐसे लोग नहीं के बराबर हैं। इन कार्यों को आरंभ कर सकें। पर यह प्रयत्न जारी रखना चाहिए कि जो व्यक्ति इन कार्यों के उपयुक्त हों वे इन्हें भी आरंभ करें। युग-निर्माण भावनाओं के अनुरूप जीवन विद्या के भावोत्पाद गायनों के रिकार्ड देश के लिए बड़े उपयोगी सि होंगे। इसी प्रकार यदि दुष्प्रवृत्तियों पर कड़ा चोट करने वाले और परमार्थ प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन करने वाले फिल्म बन सकें तो उस भी बड़ा उपकार होगा। बुरी चीजों को त हटाया जा सकता है जब उनके स्थान पर अच्छे वस्तुएँ प्रस्तुत की जायँ। रिकार्ड और फिल्म दोनों ही उद्योग यह अपेक्षा करते हैं कि प्रतिभाशाली व्यक्ति इन क्षेत्रों में प्रवेश करके एक अभाव की पूर्ति कर।

यों धनी मानी लोग अपने पैसे से विभिन्न प्रकार के उद्योग चला रहे हैं। लिमिटेड कम्पनि शेयर बेच कर छोटे लोगों द्वारा भी बड़े पैमाने चालू करली जाती हैं। ऐसे लोग यदि इन उद्योगों को अपनायें तो इससे उन्हें प्रचुर आर्थिक लाभ भी मिल सकता है और जन हित की भी बसम्भावना रहेगी। जिन्हें इस दिशा में आवश्यक उत्साह, अनुभव और साधन प्राप्त हों उन्हें इन क्षेत्रों में प्रवेश करना चाहिए। अच्छी फिल्मों और रिकार्डों का देश में स्वागत ही होगा। युग की पुष्प ऐसी वस्तुओं के प्रतिकूल नहीं अनुकूल ही है। कलाकारों, नये गायकों, नये अभिनेताओं द्वारा युग के लिए किये गये यह नवीन प्रयत्न जन-मा की दिशा मोड़ सकते हैं और पुराने फिल्म निताओं को इसी मार्ग पर लौटने के लिए विवश कर सकते हैं। पर मार्ग-दर्शन, नेतृत्व तो उन्हें चाहिए। इसे जुटाने का हमें प्रयत्न करना चाहिए।

कला एक महान शक्ति है। इसके प्रत्येक पक्ष का उपयोग मानवता को विकसित करने के लिए ही किया जाय ऐसा लोकमत जागृत करना आवश्यक है।



* सद्भावनाएँ बढ़ाने के लिए यह करें *

दया, करुणा, सेवा, उदारता सहयोग परमार्थ न्याय, संयम और विवेक की भावनाओं का जन मानस से जगाया जाना संसार की सब से बड़ी सेवा हो सकती है। निष्ठुरता, संकीर्णता और स्वार्थ-परता ने ही इस विश्व को नरक बनाया है। यदि यहाँ स्वर्गीय वातावरण की स्थापना करनी हो तो उसका एक ही उपाय है कि मानवीय अन्तस्तल को निम्न स्तर का न रहने दिया जाय। उसकी प्रसुप्त सद्भावनाओं को जगाया जाय। भावना-शील व्यक्तियों को ही देवता कहा जाता है। जहाँ देवता स्वभाव के व्यक्ति रहते हैं वहाँ ही स्वर्गीय शान्ति और समृद्धि रहती है।

सद्भावनाओं के जगाने वाले और इस दिशा में कुछ ठोस प्रेरणा देने वाले कार्यक्रम नीचे दिये हैं:—

८१—सेवा कार्यों में अभिरुचि

व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से ऐसे सेवा कार्यों का कुछ न कुछ आयोजन होते रहना चाहिए जिससे आवश्यकता वाले व्यक्तियों की कुछ सहायता होती रहे और दुखियों को सुख मिले। ईसाई मिशन में हर जगह चिकित्सा कार्यों को स्थान रहता है। अचोनकाल में बौद्ध विहारों में भी ऐसी व्यवस्था रहती थी। राम कृष्ण परमहंस निशान ने भी ऐसे ही चिकित्सालय जगह-जगह बनाये हैं। हम लोग 'तुलसी के अमृतोपम गुण' पुस्तक के आधार पर तुलसी के पत्तों में कुछ साधारण वस्तुएँ मिला कर औषधियाँ बना सकते हैं और उनसे अन्य प्रकार की औषधियों की अपेक्षा कहीं अधिक रोगियों को सेवा कर सकते हैं। तुलसी के पौधे बोनो और थोड़ा सा खर्च करने से इस प्रकार की हानि रहित चिकित्सा का क्रम हर जगह चल सकता है। सूर्य चिकित्सा की विधि भी इस दृष्टि से बड़ी उपयोगी हो सकती है।

सेवा-समितियाँ जिस प्रकार मेलों का प्रबन्ध, महाभारी, दुधंटना आदि से ग्रस्त लोगों की सहायता या दूसरे प्रकार के सेवा कार्य करती हैं, वैसे ही जन हित के कोई कार्य हमें भी करते रहने चाहिए ताकि सद्भावनाओं को जगाने में सहायता मिले। अपंग भिक्षुओं के लिए निर्वाह साधन बनाने के प्रबन्ध भी उपयोगी रहेंगे।

८२—सार्वजनिक उपयोग के उपकरण

अपनी समिति के पास कुछ ऐसे उपकरण रखे रहें जिन्हें लोग अक्सर दूसरों से माँग कर काम चलाया करते हैं। विवाह शादियों में काम आने वाले बड़े बर्तन, जलपात्र, फर्श, बिछौने, नसैनी, लालटेन, सजावट का सामान, कुँए में गिरे हुए डोल रस्सी निकालने के काँटे, आटे की सेंमई बनाने की मशीनें जैसी छोटी-मोटी चीजें एकत्रित रखी जाँय और उन्हें परम्परा खर्च लेकर लोगों को देते रहा जाय तो उससे भी सहानुभूति एवं सद्भावना बढ़ती है।

८३—जीव-दया के सत्कर्म

पशु, पक्षियों और जीव जन्तुओं के प्रति करुणा उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। पशु पक्षी भी अपने ही भाई भतीजे हैं, उनका माँस खाने-खून पीने की आदत छुड़ानी चाहिए। उससे आध्यात्मिक सद्गुण नष्ट होते हैं, नृशंखता पनपती है, चमड़ा भी आजकल जीवित काटे हुए पशुओं का ही आ रहा है। उसका उपयोग करने से भी पशुवध में वृद्धि होती है। हमें चमड़े के स्थान पर कपड़ा या रबड़ के जूते पहन कर काम चलाना चाहिए और दूसरो चमड़े की बनी वस्तुएँ भी प्रयोग नहीं करनी चाहिए। मृगछालाएँ भी

आजकल हत्या किये हुए पशुओं की ही मिलती हैं, इसलिए पूजा में उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जो रेशम कीड़ों को जिंदा उबाल कर निकाला जाता है वह भी प्रयोग न किया जाय।

सामर्थ्य से अधिक काम लिया जाना, अधिक भार लादा जाना, बुरी तरह पीटना, घायल बीमारों से काम लेना, फूँका प्रथा के अनुसार दूध निकालना आदि अनेक प्रकार से पशुओं-साथ बरती जाने वाली नृशंसता का त्याग करना चाहिए।

गौ पालन, गोदुग्ध को प्राथमिकता देना जैसे धर्म कृत्यों की ओर ध्यान देना चाहिए जिससे स्वास्थ्य, समृद्धि और सद्भावना की अभिवृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो सके।

८४-ईमानदार उपयोगी स्टोर

ऐसे स्टोर चलाये जायें जहाँ शुद्ध खाद्य वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल सकें। खाद्य पदार्थों की अशुद्धता अक्षम्य है। इस से जन स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ता है। इस अभाव की पूर्ति कोई ईमानदार व्यक्ति कर सके तो उससे उनकी अपनी आजीविका भी चले और जनता की आवश्यकता भी पूर्ण हो। आटा, दाल, चावल, तेल, घी, दूध, शहद, गुड़, मेवा, मसाले, औषधियाँ चक्की, भाप से पकाने के बर्तन, व्यायाम साधन, साहित्य, पूजा उपकरण एवं अन्य आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं का उचित मूल्य पर अभाव पूर्ति करने वाले व्यापारी आज की स्थिति में समाजसेवी हो कहे जा सकते हैं।

८५-सम्मेलन और गोष्ठियाँ

सद्भावनाओं को जागृत करने वाला लोक-शिक्षण भी व्यापक रूप से आरम्भ किया जाना चाहिए। इसके लिए समय-समय पर छोटे-बड़े सम्मेलन, विचार गोष्ठियाँ, सत्संग एवं सामूहिक आयोजन करते रहना चाहिए। एकत्रित जन समूह को विचार देने में सुविधा रहती है और उत्साह भी बढ़ता है। गायत्री यज्ञों के छोटे-छोटे आयोजन भी इस दृष्टि से उपयोगी रहते हैं। बहुत बड़ी

सभाओं की भीड़-भाड़ की अपेक्षा विचारशील लोगों के छोटे सम्मेलन अधिक उपयोगी रहते हैं। उनमें ही कुछ ठोस कार्य की आशा की जा सकती है।

८६-नवरात्रि में शिक्षण शिविर

समय-समय पर सद्भावना शिक्षा शिविर होते रहें, इस दृष्टि से आश्विन और चैत्र की नवरात्रियाँ सर्वोत्तम रहती हैं। उस समय ६-६ दिनके शिविर हर जगह किये जाया करें। प्रातःकाल जप हवन, अनुष्ठान का आयोजन रहे। तीसरे पहर विचार गोष्ठी और भजन कीर्तन एवं रात्रि को सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम रहा करे। अंतिम दिन जुलूस, प्रभात फेरी, एवं बड़े सामूहिक यज्ञ के साथ पूर्णाहुति, प्रसाद वितरण आदि का कार्यक्रम रहा करे। प्रसाद में सच्चा सत्साहित्य भी वितरण किया जाया करे। बलिदान में बुराइयाँ छुड़ाई जाया करें। नारी प्रतिष्ठा की दृष्टि से अन्त में कन्या भोज किया जाया करे। भाषणों और प्रवचनों की आवश्यकता युग निर्माण की विचार धारा को प्रस्तुत कर सकने वाले कोई भी कुशल वक्ता आसानी से पूरी कर सकते हैं। वर्ष में ६-६ दिनके दो नवरात्रि आयोजन शिक्षण शिविरों के रूप में चलते रहें तो इससे उपासना और भावना के दोनों ही महान लाभों से जन साधारण को लाभान्वित किया जा सकता है। पर्व और त्यौहारों पर भी इन्हें विकसित बनाने के लिए ऐसे ही आयोजन किये जाते रहने चाहिए।

८७-धर्म-प्रचार की पद-यात्रा

घरेलू कार्यों में छद्मटी लेकर कुछ विचारशील लोग टोली बनाकर पद-यात्रा पर निकल करे। पूर्ण निश्चित प्रोग्राम पर एक-एक दिन ठहरने हुए आगे बढ़ें। प्रातः जप हवन, तीसरे पहर विचार गोष्ठी और रात्रि को सामूहिक प्रवचनों का कार्यक्रम रहा करे। जिन जगहों में टोली को ठहरना हो वह पहले से ही आवश्यक तैयारी रहे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। सन्त विनोबा की भूराज जैसी प

यात्राएँ युग-निर्माण योजना के प्रसार के लिए भी समय-समय पर की जाती रहनी चाहिए।

प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष बहरायच जिले में श्री गिरीश देव वर्मा के नेतृत्व में एक महीने की पद-यात्रा का कार्यक्रम संभ्रान्त एवं सुशिक्षित लोगों ने बनाया है। टोलो की योजना तथा कार्य-पद्धति का विवरण पाठक अगले अंक में पढ़ें।

८८—आदर्श वाक्यों का लेखन

दीवारों पर आदर्श वाक्यों का लेखन एक सस्ता लोक शिक्षण है, गेरू में गोंद पका कर दीवारों पर अच्छे अक्षरों में आदर्श शिक्षात्मक एवं प्रेरणाप्रद वाक्य लिखे जायें तो उनसे पढ़ने वालों पर प्रभाव पड़ता है। जिस जगह प्रेरणाप्रद विचार पढ़ने को मिलें तो उस स्थान के सम्बन्ध में स्वतः ही अच्छी भावना बनती है। जहाँ स्याही का ठीक प्रबन्ध न हो सके तो सूखे गेरू की डली से भी लिखते रहने का कार्यक्रम चलता रह सकता है। कई व्यक्ति मिल कर अपने नगर को दीवारों पर इस प्रकार लिख डालने का कार्यक्रम बनाले तो जल्दी ही नगर की सारी दीवारें प्रेरणाप्रद बन सकती हैं।

८९—संजीवन विद्या का विधिवत् प्रशिक्षण

संजीवन विद्या का एक केन्द्रीय विद्यालय बनाया जाना है, जिसमें जीवन की प्रत्येक समस्या पर गहन अध्ययन करने और उन्हें सुलझाने सम्बन्धी तथ्यों को जानने का अवसर मिले। अव्यवस्था, गृह कलह, आर्थिक तंगी, विरोधियों का आक्रमण, अस्तव्यस्त दाम्पत्य जीवन, बालकों के भविष्य निर्माण की समस्या, आत्म कल्याण पक्ष की बाधाएँ, गरीबी और असफलता, चिंता और उद्वेग, अयोग्यता एवं अशक्ति, प्रगति पथ के अवरोध आदि अनेकों कठिनाइयों के हल व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुरूप सुलझाने का प्रशिक्षण उस विद्यालय में रहे। स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय करते हुए मनुष्य किस प्रकार लोक और परलोक में सुख शान्ति का अधिकारी बन सकता है यह पूरा शिक्षण मनोविज्ञान,

समाज शास्त्र और लोक व्यवहार के सर्वाङ्गपूर्ण आधार पर दिया जाय जिससे व्यक्तित्व के विकास में समुचित सहायता मिले।

ऐसे विद्यालय का अभाव बहुत खटकने वाला है। अनेकों प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ सर्वत्र मौजूद हैं पर जिन्दगी जीने की विद्या जहाँ सिखाई जाती हो ऐसा प्रबन्ध कहीं भी नहीं है। हमें यह कमी पूरी करनी है। अगले वर्ष से ऐसा केन्द्रीय प्रशिक्षण मथुरा में चलने लगेगा। उसका पाठ्य क्रम छे महीने का होगा। प्रयत्न यह होना चाहिए कि परिवार के सभी विचार-शील लोग क्रमशः उसका लाभ उठाते चले।

९०—छोटे स्थानीय शिक्षण-सत्र

जो लोग मथुरा नहीं पहुँच सकते और इतना लम्बा समय भी नहीं दे सकते उनके लिए एक महीना का छोटा शिक्षण सत्र प्रत्येक केन्द्र पर चलता रहे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षार्थी जीवन विद्या की पाठ्य पुस्तिकाओं के आधार पर समस्याओं को सुलझाने का ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार एक महीने में ३० ट्रैक्टों का अध्ययन हो सकता है, अंतिम दिन समावर्तन होगा। शिक्षार्थियों के ज्ञान की परीक्षा भी हुआ करेगी यह पाठ्य क्रम भी सस्ती ट्रैक्ट पुस्तिकाएँ लिख कर लगभग तैयार है। दो-तीन महीने छुटने में और लगेंगे। इसका प्रचलन अगले कुछ महीनों में ही आरम्भ होगा।

इन सत्रों के चलाने के लिए जगह-जगह व्यवस्था की जाय, जिससे युग-निर्माण के लिए आवश्यक संजीवन विद्या का ज्ञान व्यापक बन सके।

सद्भावनाओं को बढ़ाने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न होने चाहिए। दस कार्यक्रमों का विवरण ऊपर दिया है। ऐसे और भी अनेक कार्य हो सकते हैं जिन्हें परिस्थितियों के अनुरूप जन मानस में सद्भावनाएँ बढ़ाने की दृष्टि से उत्साहपूर्वक कार्यान्वित करते रहना चाहिए।

—: राजनीति और सच्चरित्रता :—

—)~*~(—

आज की परिस्थितियों में शासन सत्ता की शक्ति बहुत अधिक है। इसलिए उत्तर-दायित्व भी उसी पर अधिक है। राष्ट्रीय चरित्र के उत्थान और पतन में भी शासन-तंत्र अपनी नीतियों के कारण बहुत कुछ सहायक अथवा बाधक हो सकता है। नीचे कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं जिनके आधार पर राजनीति के क्षेत्र से चरित्र निर्माण की दिशा में बहुत काम हो सकता है। हम लोग आज की प्रत्यक्ष राजनीति में भाग नहीं लेते पर एक मत-दाता और राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक होने के नाते इतना कर्तव्य तो है ही कि शासन तंत्र में आवश्यक उत्कृष्टता लाने के लिए प्रयत्न करें।

जो लोग आज चुने हुए हैं उन तक यह विचार पहुँचाये जायँ और जो आगे चुने जायँ उन्हें इन विचारों की उपयोगिता समझाई जाय। चुने हुए लोगों का बहुमत तो इस दिशा में बहुत कुछ कर सकता है। अल्प मत के लोग भी बहुमत को प्रभावित तो कर ही सकते हैं। जन आन्दोलन के रूप में यह विचारधारा यदि सरकार तक पहुँचाई जाय तो उसे भा इस ओर ध्यान देने और आवश्यक सुधार करने का अवसर मिलेगा। हमें रचनात्मक प्रयत्न करने चाहिए और शासन में चरित्र-निर्माण के उपयुक्त वातावरण रहे इसके लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

नीचे दस विचार प्रस्तुत हैं। इनके अतिरिक्त तथा विकल्प में भी अनेक विचार हो सकते हैं जिनके आधार पर राष्ट्र का चारित्रिक विकास हो सके। उनको भी सामने लाना चाहिए।

६१—मत-दान और मतदाता

जहाँ प्रजातंत्र पद्धति है वहाँ शासन के भले या बुरे होने का उत्तर-दायित्व वहाँ के उन सभी नागरिकों पर रहता है जो मतदान करते हैं। 'वोट'

राष्ट्र को एक परम पवित्र थाती है। उसको महत्ता हम में से हर को समझनी चाहिए। किसी पक्षपात, दबाव या लोभ में आकर इसे चाहे किसी को दे डालने का उथलापन नहीं अपनाना चाहिए। जिस पार्टी या उम्मेदवार को वोट देना हो उसकी विचार धारा, भावना एवं उत्कृष्टता को भली भाँति परखना चाहिए। राष्ट्र के भाग्य निर्माण का उत्तर-दायित्व हम किसे सौंपे? इस कसौटी पर जो भी खरा उतरे उसे ही वोट दिया जाय। प्रजातंत्र का लाभ तभी है जब हर नागरिक उसका महत्व और उत्तर-दायित्व समझे और अनुभव करे। शासन में आवश्यक सुधार अभीष्ट हो तो इसके लिए मतदाताओं का समझाया और सुधारा जाना आवश्यक है।

६२—सीमित प्रजातंत्र

प्रजातंत्र की सफलता तभी है जब मतदाता और निर्वाचित व्यक्ति अपना राष्ट्रीय उत्तर-दायित्व ठीक तरह समझे। इस उत्तर-दायित्व को जो जितना उठा सके, उसे उतना ही शासन में भाग लेने का अधिकार हो। मतदाता की कोई कसौटी हो और चुनाव में खड़े होने वाले की भी इस क्षमता में सम्पन्न होने की आवश्यक शर्त रहे। इसे सीमित प्रजातंत्र भी कह सकते हैं। भारत जैसे अविकसित देश के लिए सीमित प्रजातंत्र प्रणाली उपयुक्त हो सकती है। शासन तंत्र का संचालन करने वाले प्रतिनिधि सभा में केवल उच्च आदर्शवान् व्यक्ति ही पहुँच सकें ऐसी कोई प्रतिबंधपूर्ण व्यवस्था रहे तो ही शासन की उत्कृष्टता बढ़ेगी। हमारे विधान में इस प्रकार की व्यवस्था रहे।

६३—शासकों पर चारित्रिक नियंत्रण

जिनके हाथ में शासन सत्ता है उन मन्त्रियों और अफसरों के व्यक्तिगत चरित्र पर कड़ी दृष्टि रखने वाली एक स्वतन्त्र समिति राष्ट्रपति के आधीन हो।

इस समिति को और राष्ट्रपति को इतना अधिकार हो कि शासकों को बहुमत या पक्षगत के आधार पर मनमानी करने की गुंजायश न रहे। शासन प्रबन्ध के बारे में सर्वसत्ता सम्पन्न हो, पर उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों के चारित्रिक नियंत्रण का प्रबन्ध उच्च स्तरीय रहे। प्राचीन काल में राजाओं का नियंत्रण राजगुरु करते थे। वह राजगुरु की व्यवस्था व्यवहारिक रूप में अभी भी रहे। जो लोग चुनाव नहीं लड़ते पर उत्कृष्ट काटि के अनुभवी एवं विचारक हैं, उनके परामर्श का लाभ भी शासन को मिलता रहे ऐसा कोई परामर्श तन्त्र भी राष्ट्रपति गठित करें और उसके अभिमत पर सरकार को ध्यान देने के लिये कहें ऐसी व्यवस्था भी आवश्यक है।

६४-शिक्षा पद्धति का स्तर—

शिक्षालय व्यक्तित्व ढालने की फैक्टरियाँ होती हैं। वहाँ जैसा वातावरण रहता है, जिस व्यक्तित्व के अध्यापक रहते हैं, जैसा पठ्यक्रम रहता है, जैसी व्यवस्था चलती जाती है उसका भारी प्रभाव छात्रों की मनभूमि पर पड़ना है और वे भावी जीवन में बहुत कुछ उसी ढाँचे में ढल जाते हैं। आज शिक्षा का पूरा नियंत्रण सरकार के हाथ में है इसलिए छात्रों की मनोभूमि का निर्माण करने की जिम्मेदारी भी बहुत कुछ उसी के ऊपर है। शिक्षण पद्धति में ऐसा सुधार करने के लिए सरकार का कहा जाय जिसमें चरित्रवान् कर्मठ और सम्य, सेवा भावी नागरिक बनकर शिक्षार्थी निकल सकें। सैनिक शिक्षा को शिक्षण का अनिवार्य अंग बनाया जाय और नैतिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं से विद्यालयों का वातावरण पूर्ण रहे। इसके लिए सरकार पर आवश्यक दबाव डाला जाय।

६५-कुरीतियों का उन्मूलन

सामाजिक कुरीतियों की हानियाँ नैतिक अपराधों से बढ़कर हैं। भले ही उन्हें मानसिक दुर्बलता-

वश अपनाये रखा गया हो पर समाज का अहित तो बहुत भारी ही होता है। इसलिये इनके विरुद्ध भी कानून बनने चाहिये। स्वर्ण नियंत्रण का कानून कड़ाई के साथ अमल में आते ही जेवरों का सौंयों पुराना मोह समाजों के भीतर समाप्त हो गया। इसी प्रकार सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अथ कानून भी बनाये जाय और उनके पालन कराने में स्वर्ण नियंत्रण जैसी कड़ाई बरती जाय। यों दहेज, मृत्युभोज, बाल-विवाह, वेग्यावृत्त आदि के विरुद्ध कानून मौजूद हैं पर वे इनने ढीले पांले हैं कि उससे न्याय और कानून का उपास ही बनता है। यदि सचमुच ही कोई सुधार करना हो तो कानूनों में तेजा और कड़ाई रहनी आवश्यक है। सरकार पर ऐसे ही सुधारात्मक कड़े कानून बनाने के लिए जोर डाला जाय।

६६-सस्तु, शीघ्र और सरल न्याय

आज का न्याय बहुत पेचीदा, बहुत लम्बा, बहुत ध्यसाध्य और ऐसी गुथियों से भरा है कि बेचारा निधन और भाला भाला व्यक्ति न्याय से वंचित हो रह जाता है। धनों के लिए ऐसी गुंजायश मिल जाती है कि वे पैसे के बल पर सीधे को उलटा कर सकें। न्यायतन्त्र में से ऐसे सारे छिड़ बन्द किये जाने चाहिए और ऐसी व्यवस्था बननी चाहिए कि सरल रीति से ही व्यक्ति को शीघ्र और सस्ता न्याय प्राप्त हो सके। इन विभाग के कर्मचारियों के हाथ में जनता को परेशान करने की क्षमता न रहे तो रिश्वत सहज ही बन्द हो सकती है।

६७-अपराधों के प्रति कड़ाई

अपराधियों के प्रति कड़ाई की कठोर नीति रखने की प्रेरणा सरकार को करनी चाहिये। स्वल्प दण्ड और जेलों में अमाधारण सुविधाएँ मिलने से बन्दी सुधरते नहीं बल्कि निर्भय होकर आते हैं। सुधारने वाला वातावरण जेलों में कहाँ है? यदि वहाँ असुविधा भी न रहेगी तो अपराधी लोग उसकी

परवा न करते हुए दुस्साहसपूर्ण अपराध करते ही रहेंगे। रूस आदि जिन देशों में अपराधी को कड़ी सजा मिलती है वहाँ के लोग अपराध करते हुए डरते हैं। यह डर घट जाय या मिट जाय तो अपराध बढ़ेंगे ही। इसलिए स्वल्प दण्ड देने वाले कानून और जेल में अधिक सुविधाएँ मिलना चरित्र निर्माण की दृष्टि से हानिकारक है, इस तथ्य को सरकार से मनवाने का प्रयत्न किया जाय।

६८—गुण्डा तत्वों का उन्लमून

कानूनों पकड़ से जो लोग बच जाते हैं उन असामाजिक गुण्डातत्वों की अपराध वृत्ति रोकने के लिए एक विशेष तन्त्र गठित रहे, जिसमें उच्च आदर्शवान परखे हुए लोग ही गुप्तचरों के रूप में वस्तु स्थिति का पता लगाते रहें। इनकी जाँच के आधार पर गुण्डा-तत्वों को नजरबन्द किया जा सके ऐसी व्यवस्था रहे। आज अपराधी लोग कानून की पकड़ से आतंक, धन और चतुरता के आधार पर बच निकलते हैं। यह सुविधा बन्द की जाय। न्यायालयों से ही नहीं वस्तुस्थिति जाँच करने वाले उच्चस्तरीय जाँच समिति की सूचना के आधार पर भी दण्ड व्यवस्था की जा सके, ऐसी व्यवस्था की जाय।

६९—अधिकारियों की प्रामाणिकता

अपराधों को रोकने वाले शासनाधिकारियों को उनकी ईमानदारी और विश्वस्तता की लम्बी अवधि तक परख होते रहने के बाद नियुक्त किया जाय। उन्हें विभागों में से लिया जाय और यह देखा जाय

कि अपराधों को रोकने में इनकी भावना एवं प्रतिभा कैसी रही है। अनुभवहीन लड़कों को एक दम अपराध निरोधक पदों पर नियुक्त कर दिया जाना और उनके चरित्र की गुप्त जाँच न होते रहना शासन में भ्रष्टाचार उत्पन्न करता है। जिन पदों पर भ्रष्टाचार की सम्भावना है उन पर नियुक्तियाँ शिक्षा एवं योग्यता के अतिरिक्त अनुभव एवं चरित्र को प्रधानता देते हुए की जाया करें। अपराधी अधिकारियों को जन दण्ड की अपेक्षा दस-बीस गुना दण्ड मिलने की व्यवस्था कानून में रहे। अधिकारियों का भ्रष्टाचार मिटे बिना जनता की अनैतिकता का मिट सकना कठिन है।

१००—आर्थिक विषमता घटे

आर्थिक विषमता और फिजूल खर्चों पर नियंत्रण रहे। आर्थिक कारणों से अधिकतर अपराध बढ़ते हैं। इसलिये उपलब्धि के साधन हर व्यक्ति को इतने मिलें जिससे उसकी ठीक गुजर हो सके। यह तभी संभव है जब अधिक उपभोग एवं संग्रह की सीमा पर भी नियंत्रण हो। मिलों में कपड़ा की डिजायनें कम बनें तो कपड़े का खर्च बहुत घट जाय। इसी प्रकार उपयोगी वस्तुओं की संख्या एवं भिन्नता सीमित करदी जाय। राष्ट्रीय जीवन का एक स्तर कायम हो जिसमें थोड़ा अन्तर तो रह सकता है पर जमीन आसमान जैसा अन्तर न हो। सामूहिकता और समता के आधार पर समाज का पुनर्गठन किया जाय तो उसमें अपराधों की गंजायश सहज ही बहुत घट जायगी।

*** युग निर्माण की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि ***



युग निर्माण की पृष्ठभूमि राजनैतिक एवं सामाजिक नहीं वरन् आध्यात्मिक है। इतना महत्वपूर्ण कार्य इसी स्तर पर उठाया या बढ़ाया जा सकता है। राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर पर किये

ग सुधार प्रयत्नों में वह श्रद्धा, भावना, तत्परता एवं गहराई नहीं हो सकती, जो आध्यात्मिक स्तर पर किये गये प्रयत्नों में सम्भव है। हम इसी स्तर से कार्य आरम्भ कर रहे हैं। इसलिए हम सब को

उपासना, तपश्चर्या एवं आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत होना चाहिए, तथा योजना के सम्पर्क में आने वाले दूसरे लोगों को भी इसी भावना से प्रभावित करना चाहिए। हमारे सुधार आन्दोलन आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक साधन मात्र हैं इसलिए साधन के साथ साध्य को भी ध्यान में रखना ही होगा। हमारे आठ आध्यात्मिक कार्यक्रम नीचे प्रस्तुत हैं:—

१०१—गायत्री उपासना

संस्कृति का मूल उद्गम गायत्री महा मंत्र है। उसमें जोवनोत्कर्ष की समस्त शिक्षाएँ बीज रूप से मौजूद हैं। उपासना का मूल उद्देश्य भावनाओं और प्रवृत्तियों का सन्मार्ग की ओर प्रेरणा प्राप्त करना ही तो होता है। यह आधार गायत्री में है। और उसकी उपासना में वह शक्ति भी है कि अन्तःकरण को इसी दिशा में मोड़े। इस दृष्टि से गायत्री सर्वाङ्ग पूर्ण एवं सार्वभौम मानवीय उपासना कही जा सकती है। उसके लिए हमें नित्य नियमित रूप से कुछ समय निकालना चाहिए। चाहे वह समय पाँच मिनट ही क्यों न हो। १०८ गायत्री मंत्र जपने में प्रायः इतना ही समय लगता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि अपने घर, परिवार, सम्बद्ध समाज और परिचय-क्षेत्र के सभी लोग गायत्री उपासना में संलग्न रहें। इससे अनिरिक्त उपासनाएँ जो करते हैं वे उन्हें भी करते हुए गायत्री जप कर सकते हैं।

१०२—यज्ञ की आवश्यकता

जिस प्रकार गायत्री सद्भावना की प्रतीक है इसी प्रकार यज्ञ सत्कर्मों का प्रतिनिधि है। अपनी प्रिय वस्तुओं को लोक हित के लिए निरन्तर अर्पित करते रहने की प्रेरणा यज्ञीय प्रेरणा कहलाती है। हमारा जीवन ही एक यज्ञ बनना चाहिए। इस भावना को जीवित जागृत रखने के लिए यज्ञ प्रक्रिया को दैनिक जीवन में उपासनात्मक स्थान दिया जाता है। हमें नित्य यज्ञ करना चाहिए। यदि विधिवत् यज्ञ करने में समय और धन खर्च होने की असुविधा हो तो चौके में बने भोजन के

पाँच छोटे ग्रास गायत्री मंत्र बोलते हुए अग्निदेव पर होमे जा सकते हैं। अथवा भोजन करते समय इसी प्रकार का अग्नि पूजन किया जा सकता है। घी का दीपक एवं अगर बत्ती जलाना भी यज्ञ विधि का ही एक रूप है। इनमें से जिसे जैसी सुविधा हो वह यज्ञ क्रम बना ले, पर यह प्रथा 'अखण्ड ज्योति परिवार' के हर घर में जीवित अवश्य ही रहनी चाहिए।

१०३—हमारे दो पुण्य-पर्व

गायत्री जयन्ती—ज्ञान-पर्व—(जेष्ठ सुदी १०)
और गुरु पूर्णिमा—कर्म-पर्व—(आषाढ सुदी १५)
यह दो भारतीय धर्म में महान आध्यात्मिक पर्व माने गये हैं। एक गायत्री माता का प्रतीक है दूसरा यज्ञ पिता का। इन पर्वों को हमें बह्य और आन्तरिक दोनों ही स्तरों पर उत्साहपूर्वक मनाना चाहिए। दोनों पर्वों पर हवन, दीप-दान, उपवास, भजन, कीर्तन, गोष्ठी, प्रवचन, प्रभात फेरी, पूजन, दान, जप-तप जो भी बन पड़े सो व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से करना चाहिए। अपनी श्रद्धा को सजीव रखने के लिए, सत्कर्मों एवं सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने के लिए समय, श्रम, धन एवं भावनाओं की श्रद्धाञ्जलि अर्पित करके ज्ञान ऋण से उन्मूढ होने का कुछ प्रयत्न करना ही चाहिए।

इन दोनों पर्वों के दिन दीप-दान करना चाहिए। अखण्ड ज्योति परिवार के हर सदस्य के घर-घर दिवाली की तरह दीपक जलाये जाय करें। इन २६ दिनों में सवालक्ष या चौबीस हजार जिससे जितना बन पड़े एक अनुष्ठान भी करने का प्रयत्न करना चाहिए। ब्रह्मचर्य, भूमि शयन आदि आन्य जो तपश्चर्या बन पड़े वे भी इस अवधि में करनी चाहिए। लोक सेवा की दृष्टि से धर्म फेरी, पद यात्रा, कथा प्रवचन, जैसे कोई सामूहिक कार्यक्रम भी रखे जा सकते हैं। इन दो पर्वों पर सामूहिक उत्सव भी मनाये जा सकते हैं। गायत्री जयन्ती के दिन ज्ञान की महत्ता और गुरु पूर्णिमा के दिन कर्म की महत्ता का विशेष रूप से प्रतिपादन किया जाय।

दोनों के समन्वय से ही सर्वाङ्गपूर्ण आध्यात्म बनता है।

१०४—चान्द्रायण व्रत तपश्चर्या

विशेष आत्म बल का संग्रह, पापों का प्रायश्चित्त एवं शरीर शोधन की दृष्टि से चान्द्रायण व्रत का विशेष महत्व माना गया है। इस तपश्चर्या को पुनः प्रचलित करना चाहिए। गायत्री तपोभूमि में समय-समय पर शिक्षण शिविरों के साथ यह आयोजित होते ही रहते हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से यह तपश्चर्या जगह-जगह होने लगे। इसे करने वाले को शारीरिक एवं मानसिक कायाकल्प होने जैसा लाभ मिलता है।

युग-निर्माण के कार्यकर्ताओं को एक चान्द्रायण तपश्चर्या करके एक महत्वपूर्ण परीक्षा उत्तीर्ण कर लेनी चाहिए। इससे एक महान कार्य को सम्पादित कर सकने लायक उनकी आन्तरिक क्षमता और प्रामाणिकता बढ़ेगी। चान्द्रायण व्रत का पूरा विधान अगले अंक में लिखेंगे।

१०५—पंचकोशी विशिष्ट साधना

उच्च आध्यात्मिक स्तर को विकसित करने के लिए पंचकोशी गायत्री उपासना आवश्यक है। अन्न मय कोश, मनोमय, कोश, प्राणमय कोश, आनन्द मय कोश को विकसित करके आत्म साक्षात्कार की स्थिति तक पहुँचने के लिए इस साधना की बहुत उपयोगिता है। गत दो वर्षों से अक्टूबर मास की अखण्ड ज्योति में एक-एक वर्ष का साधना क्रम प्रस्तुत किया जा रहा है। जिनने उसे आरंभ किया है उनमें आशा जनक प्रगति की है। जो अभी तक उसे आरंभ नहीं कर सके हैं उन्हें उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

१०६—आत्म चिन्तन और सत्संकल्प

युग निर्माण का सत्संकल्प हमें नित्य प्रातः उठने समय और रात को सोने समय पढ़ना चाहिए। उसके अनुसार जीवन ढालना चाहिए। सोने समय दिन भर के कामों का लेखा-जोखा लेना चाहिए और जो भूलें उस दिन हुई हों वे दूसरे दिन

न होने पावें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। जीवन को दिन-दिन शुद्ध करते रहा जाय।

१०७—अविच्छिन्न दान परम्परा

नित्य कुछ समय और कुछ धन परमार्थ कार्यों के लिए देते रहने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। दान हमारे जीवन की एक अविच्छिन्न आध्यात्मिक परम्परा के रूप में चलता रहे। इस प्रकार अपनी आजीविका का एक अंश नियमित रूप से परमार्थ के लिए लगाया जाता रहे। इसके लिये कोई धर्मपेटी या धमघट में अन्न या पैसा डालते रहा जाय। यह धन केवल सद्भावना प्रसार के ज्ञान यज्ञ में ही खर्च हो। युग-निर्माण का आधार वही तो है।

इसी प्रकार धर्म प्रचार के लिये, जन सम्पर्क के लिये कुछ समय भी नित्य दिया जाय। नित्य न बूझ पड़े तो साप्ताहिक अवकाश के दिन अधिक समय दे करके दैनिक क्रम की पूर्ति की जाय। सद्भावनाओं के प्रसार और जागरण के लिये जन सम्पर्क ही प्रधान उपाय है। इस में शिक्षक या संकोच करने की, अपमान अनुभव करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

१०८—सत्याग्रही स्वयंसेवक सेना

सामाजिक कुरीतियों एवं नैतिक बुराइयों को मिटाने के लिये राग-द्वेष से रहित, संयमी, मधु व्यवहार वाले और दृढ़ चरित्र व्यक्तियों की एक ऐसी सत्याग्रही सेना गठित की जानी है, जो दूसरों को बिना कष्ट पहुँचाये अपने ही त्याग-तप बुराइयाँ छुड़ाने के लिये कष्ट सहने को तैयार हों। सत्याग्रह कहाँ, किस सीमा तक, किस प्रकार किया जाय यह एक बहुत ही दूरदर्शिता का प्रश्न है अन्यथा सुधार के स्थान पर द्वेष फैल सकता है। इन सब बातों का ध्यान रखते हुये सत्याग्रही स्वयंसेवक सेना का गठन और उसके द्वारा बुराइयों उन्मूलन की व्यवस्था भी करना ही पड़ेगी। इसके लिये उपयुक्त व्यक्तियों को अपना नाम स्वयं सेवक की श्रेणी में लिखाना चाहिये। शक्ति को देखते वैसे ही कार्यक्रम आरम्भ किये जावेंगे और प उन्हें प्रशिक्षित भी करना पड़ेगा।

—: इसी मास में आपको यह करना है :—

युग-निर्माण योजना की बौद्धिक रूपरेखा गत दो वर्षों से परिजनों के सामने प्रस्तुत करने के उपरान्त अब इस गुरु पूर्णिमा (६ जुलाई) से उसे क्रियात्मक रूप दिया जा रहा है। इस कार्य-प्रक्रिया में परिवार के प्रत्येक परिजन को भाग लेना चाहिए। घर में कोई विवाह शादी जैसा उत्साह होता है तो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक घर के सभी नर-नारी उसमें किसी-न-किसी तरह अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार भाग लेते हैं। कोई भी उनमें से तटस्थ नहीं रहता। इसी प्रकार अखण्ड-ज्योति परिवार के द्वारा आरम्भ की जाने वाली युग-निर्माण योजना को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण, अत्यन्त महान, कार्यक्रम उत्सव आयोजन माना जाना चाहिए। और उसमें किसी न किसी प्रकार भाग लेने का प्रयत्न हम में से हर व्यक्ति को करना चाहिए।

आपको कुछ तो करना ही होगा

इस अंक में पिछले पृष्ठों पर १०८ योजनाएँ प्रस्तुत हैं। विभिन्न योग्यता और परिस्थितियों के व्यक्तियों की क्षमता और अभिरुचि का ध्यान रखते हुए यह कार्यक्रम रखे गये हैं। इनमें से कुछ-न-कुछ कार्य अपने लिए हर स्थिति का मनुष्य चुन सकता है। दुर्बल, व्यस्त और अयोग्य व्यक्ति भी इसमें से कुछ-न-कुछ ऐसे कार्यक्रम ढूँढ़ सकता है जो उसके लिये सरल हो सकते हैं। दूसरों की सेवा न हो सके तो योजना के अन्तर्गत अपना सुधार और अपना विकास करने के लिये भी कुछ प्रयत्नशील हो सकता तो संभव बन ही सकता है। अपने में जितना सुधार और परिवर्तन हम कर लेते हैं वह भी समाज, राष्ट्र और विश्व के एक अङ्ग का ही सुधार है। आत्म-निर्माण की दिशा में तो रोगी और पराधीन व्यक्ति भी कुछ-न-कुछ कर ही सकते हैं। इस दृष्टि से हर क्षमता के व्यक्ति के लिये योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम मौजूद है। जो प्रभावशाली हैं, जिनका दूसरे

कितनों से ही सम्पर्क है, वे तो अपनी प्रतिभा का उपयोग करके बहुत कुछ काम कर सकते हैं।

योजना में धन की कोई आवश्यकता नहीं। न उसके लिये संग्रह करने या दान, चन्दा माँग जैसा कार्यक्रम है। धन के आधार पर चलने वाली योजनाएँ सफल भी नहीं होतीं। प्रस्तुत योजना में समय और भावनाओं को ही आवश्यकता पड़ेगी। सो इसके लिये चाहे तो गरीब से गरीब आदम भी अपनी परिस्थिति के अनुसार सामर्थ्यवान बन सकता है। जिसके अन्तःकरण में जितना उत्साह, साहस, परमार्थ एवं पुरुषार्थ मौजूद है वह उतना ही बड़ा क्षमता सम्पन्न माना जायगा। योग्यताओं से नहीं भावनाओं से योजना को कार्यान्वित किया जाना है। भावनाओं से रहित परमात्मा ने को अन्तःकरण नहीं बनाया। इसलिये हमें यह आशा और विश्वास परिवार के हर व्यक्ति के प्रति प्रकट हो रहा है कि इस महत्वपूर्ण अवसर पर हमारा प्रत्येक स्वजन को हाथ बड़ाते हुए देखा जा सकेगा वैसे ही देखना चाहते हैं और विश्वास है कि देखेंगे भी।

गुरु-पूर्णिमा से श्रीगणेश

योजना की रूप-रेखाएँ दो वर्षों तक समझाने के उपरान्त अब इसी गुरु पूर्णिमा (६ जुलाई) से उसे व्यवहारिक रूप में कार्यान्वित किया जा रहा है। इसी दिन हमें आदेश मिला था। मुहूर्त की दृष्टि से भी यही वर्ष का सबसे श्रेष्ठ दिन इस कार्य के लिए है। इसलिये युग-निर्माण योजना का शुभारम्भ श्रीगणेश इसी शुभ मुहूर्त से किया जा रहा है। उस दिन अखण्ड-ज्योति परिवार के हर सदस्य को उपवास करना चाहिए। एकान्त सेवन और जितना संभव हो सके मौन रहना चाहिये वह हृदय मंथन का दिन होना चाहिये। “जीवन की इतनी अवधि अस्त व्यस्त हो चली अब जो थोड़े दिन और शेष रहे हैं।

उनका सदुपयोग करने के लिये क्या कुछ किया जा सकता है ?” यह प्रश्न अपने आपसे बराबर पूछना चाहिए। और यदि अन्तरात्मा में से यह आवाज निकले कि कुछ करना उचित और आवश्यक है तो अपनी स्थिति के अनुसार इन १०८ कार्यक्रमों में से कुछ-न-कुछ आने लिये निर्धारित कर लेना चाहिए। और उस दूसरे दिन से ही कार्यान्वित करना आरंभ कर देना चाहिए। जो भी कदम उठाये जाय सोच-समझ कर तथा साहसपूर्वक उठाये जाय ताकि उनके लौटाने पर मनोबल के गिरने का अवसर न आए।

यह अंक जून के प्रथम सप्ताह में पाठकों के पास पहुँच जावेगा। गुरु पूर्णिमा का तबसे लगभग १ महीना शेष रहेगा। इस एक महीने में बन पड़े तो आत्म-शुद्धि के लिए कुछ-न कुछ विशेष उपासना करने का कार्यक्रम बनाना चाहिए ताकि आत्म-शोधन के इस अभियान के लिए आवश्यक आत्म-बल प्राप्त हो सके। इसी अवधि में इस अंक को दो या तीन बार पढ़ना चाहिए और सोचना चाहिये कि हम अपनी स्थिति के अनुसार क्या कर सकते हैं। यह एक महीना हृदय-मथन की अवधि है। प्रतिदिन कुछ समय एकान्त में बैठकर मानव जावन की महत्ता और उसकी सफलता के लिये प्रस्तुत योजना के समन्वय के सम्बन्ध में प्रतिदिन अनेक बार सोचना चाहिये और जो कुछ आत्मा स्वीकार करे उसे कर गुजरने के लिए साहस कर ही लेना चाहिए।

जो शक्य है वही कोजिए

लम्बी चौड़ी, अमंभव और झूठी प्रतिज्ञाएँ करने की किसी को भी आवश्यकता नहीं है। आज जो संभव है हम उतना ही सोचें और उतना ही करें। भविष्य में जब जहाँ परिस्थितियाँ सामने आवें अपनी कार्यपद्धति को और भी अधिक सतेज किया जा सकता है। इस अंक के अंतिम पृष्ठ पर एक फार्म ‘संकल्प श्रद्धांजलि’ का लगा है। गुरु पूर्णिमा के दिन उपवास रख कर उसे भरना चाहिये और उसी दिन उसे मथुरा भेज देना चाहिए ताकि हम

स्वजनोके हृदय और मस्तिष्क को पढ़ सकें और उसी आधार पर अगले कदम उठाने का साहस कर सकें। गुरुपूर्णिमा के दिन से जो कार्य आरम्भ किए जा रहे हैं उनका उल्लेख और आगे जिन कार्यों के करने में अभिरुचि एवं उत्साह है उनका संकेत कर देना मात्र पर्याप्त है। क्या कार्य, कितना, किस प्रकार बन पड़ेगा यह पहले से ही कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए लम्बी-चौड़ी प्रतिज्ञाएँ भावावेश में भरकर किसी को भी नहीं करनी चाहिए। इतना ही पर्याप्त होगा कि साहस, श्रद्धा और निष्ठा के साथ निरन्तर आत्म-निर्माण और लोक हित के लिए सच्चे मनसे आगे बढ़ते रहने का हम निश्चय कर लें। क्षेत्र का विस्तार तो करना ही होगा।

जप, ध्यान, उपवास और स्वाध्याय की तरह प्रयत्न तो हम लोगों को एकाकी ही आरम्भ करने होंगे। पर चूँकि योजना का सम्बन्ध दूसरों से भी है, आत्म निर्माण तक ही बात सीमित न रहकर युग-निर्माण भी करना है इसलिए उसका सम्बन्ध दूसरों से भी जुड़ता है। दूसरों के कठोर मनो को मुलायम करने के लिए, अपने अनुकूल ढालने के लिए केवल आदेश कर देना मात्र ही पर्याप्त न होगा वरन् उन्हें तर्क, कारण, प्रमाण, उदाहरण एवं विवेचना के आधार पर आवश्यक तथ्यों को समझाना पड़ेगा, तभी अपरिचित मनो में वह भावना उत्पन्न होगी जो युग निर्माण कार्य विस्तार के लिए आवश्यक है।

इसलिए एक अनिवार्य कार्य यह भी हमें करना ही होगा कि युग-निर्माण को विचार धारा से समाज को प्रभावित किया जाय। हर व्यक्ति का एक प्रभाव-क्षेत्र होता है, वही उसका समाज है। अखण्ड ज्योति परिवार के सदस्य हमारे प्रभाव-क्षेत्र में आते हैं, इसलिए हमारा समाज, हमारा संसार, हमारा सेवा-क्षेत्र वही है। पूरी शक्ति के साथ हम उन्हें ही प्रभावित करने और कार्यक्रम में लगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यही प्रयत्न आप लोगों को भी करना चाहिए। अपने कुटुम्बो, सम्बन्धी, मित्र, परिचित एवं प्रभाव-क्षेत्र में आने वाले व्यक्ति ही आपका समाज कहलावेंगे। उन लोगों को योजना

(५८ पृष्ठ से आगे)

की आवश्यक जानकारी एवं प्रेरणा मिले उसके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए। तीन अरब जन संख्या के संसार और ४४ करोड़ के भारतवर्ष में हम ३० हजार 'अखण्ड ज्योति परिवार' के सदस्य नगण्य हैं। अपना प्रभाव-क्षेत्र न बढ़ेगा तो युग-निर्माण योजना का विकास-विस्तार कैसे हो सकेगा? इसलिए प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि अपने प्रभाव-क्षेत्र में योजना को व्यापक और लोक प्रिय बनाने के लिए हम में से प्रत्येक व्यक्ति पूरी दिलचस्पी के साथ काम करने लगे।

योजना का प्रधान साधन शस्त्र

'अखण्ड ज्योति' ही अपनी प्रेरणा का एक मात्र साधन है। इसी के आधार पर तीस हजार स्वजनों को हम इस महा अभियान में संलग्न कर सकने में समर्थ हो रहे हैं। इसी माध्यम से आप सबके लिए भी योजना का क्षेत्र विस्तार कर सकना सम्भव होगा। इसलिए प्रयत्न होना चाहिए, कि जिन पर भी अपना व्यक्तिगत प्रभाव हो उनके घर जाने, सम्पर्क बनाने और अखण्ड ज्योति पढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाय। इस एक महीने में यह अंक अपने प्रभाव-क्षेत्र के १०-२० व्यक्तियों को पढ़ा ही देना चाहिए और उनके नाम और अभिमत संलग्न फार्म में लिख कर मथुरा भेजने चाहिये। इस प्रकार इसी एक महीने में हम ३० हजार व्यक्ति ५-७ लाख व्यक्तियों तक इस प्रकाश और पुकार को पहुँचा सकने में सफल हो सकते हैं। इस कार्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाय और उसे आज से ही आरम्भ किया जाय।

यह भली प्रकार याद रखना चाहिये कि 'अखण्ड ज्योति' घाटे में चलती है। उसकी कागज, छपाई की लागत तीन रुपया बारह आना है, तीन रुपया नहीं। यह विशुद्ध पारमार्थिक प्रकाशन है। किसी को ऐसा स्वप्न में भी न सोचना चाहिये कि आर्थिक उद्देश्य के लिये उसके प्रचार की बात कही जा रही है। मिशन का क्षेत्र विस्तार करने के लिए एक मात्र साधन यही होने की दृष्टि से ही इस

बात पर जोर दिया जा रहा है कि परिजनों के प्रभाव-क्षेत्र में पत्रिका के पढ़ाने और लोक-प्रिय बनाने में कुछ उठा न रखा जाना चाहिए। अपने घर का हर सदस्य उसे पढ़े और सुने इतना ही पर्याप्त न होगा। हर पत्रिका दस-बीस व्यक्तियों द्वारा पढ़ी और सुनी ही जानी चाहिए, योजना की सफलता का यह प्रचार कार्य एक अनिवार्य अंग होगा। इस महीने तो यह कार्य योजना का एक अविच्छिन्न अंग मान कर हम सबको करना चाहिए ताकि इस महान अभियान की जानकारी अधिकाधिक लोगों को हो सके और आपको जो कार्य आगे करना है उसके लिए सहायक एवं सहयोगी उत्पन्न हो सकें।

आरम्भ घर से कीजिए

शिक्षित लड़कियों, बहनों, रिश्तेदारों, मित्रों और स्वजनों को अपने पैसे से पत्रिका उपहार में भी भिजवाई जा सकती है। ज्ञान-दान से श्रेष्ठ और कुछ नहीं हो सकता। इसका लाभ सबसे पहले अपने स्वजन सम्बन्धियों को ही देना चाहिए। अपने परिचितों को दो तीन अंक चालू करा कर अपने प्रभाव-क्षेत्र में पढ़ाने का कार्य और भी सुगम हो सकता है। जो प्रभावित हो सकें उन्हें ग्राहक भी बनाया जा सकता है। प्रयत्न करने पर गुरु पूर्णिमा को श्रद्धाञ्जलि के रूप में पत्रिका के एक दो नये ग्राहक बना देना किसी को भी कठिन नहीं हो सकता। सवाल केवल उत्साह और प्रयत्नशीलता मात्र का है। अपने पास से भी अपने प्रिय जनों के नाम पत्रिकाएं चालू कराने के लिए कुछ आर्थिक त्याग कर सकना भी साधारणतः कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। इच्छा जग पड़े तो इतने छोटे प्रयत्न सभी के लिए सम्भव हो सकते हैं।

युग-निर्माण योजना का शुभारम्भ इसी गुरु पूर्णिमा से आरम्भ करते हुए हम अपने प्रत्येक परिजन से उसमें हाथ बटाने की आशा करेंगे 'गुरु पूर्णिमा श्रद्धाञ्जलि फार्म' की अभिव्यक्तिय सभी को नियत समय पर भेज देनी चाहिए। का का आरम्भ यहीं से होगा।

॥ पूर्ण जागरण ॥



रोक नहीं सकता कोई छल बल से,
यह भारत की आत्मा जाग रही है।

इसे समझलो देशवासियो अपने सब पड़ोसियो !
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण अगुआ और हेतियो !
जाति, धर्म, दल संस्कृति क्या यह मिट्टी जाग रही है।

यह मैदान नदी औ' पर्वत नहीं जाति औ' भाषा ;
देश हमारा असली स्वतन्त्रता की है परिभाषा।
देश-देश की आत्मा इसके संग-संग जाग रही है।

था इसकी अन्तर्मुखता में वास्यानुकरण अनुपस्थित,
ऊँचे आदर्शों की जीवन अभिव्यक्ति थी अपेक्षित,
भारत के जीवन की सच्ची आस्था जाग रही है।

सँकरी आदर्श - भीतियाँ अब उत्सुक हैं गिरने को,
फूट चले हैं स्रोत उमड़ कर सभी आज मिलने को,
अब यह मागर की निस्सीम कामना जाग रही है।

लिया पकड़ कर है धर जिसने सब दुविधा भावों को,
चाट लिया है और भभक कर तमग्रस्त स्वभावों को,
यह भारत की शक्ति सनातन ज्वाला जाग रही है।

जिसने पैदा किया और पाला पोसा विकसाया,
और सत्य पर जिसने हमको बलि होना सिखलाया,
यह भारत माता की आर्य महत्ता जाग रही है।

सुन लो कान खोलकर मानव स्वार्थों, दुर्बलताओं,
अनुरों की दुर्धर्ष शक्तियों और गुप्त छलनाओं,
बच न सकोगी प्रभु की अग्नि घड़ी यह जाग रही है।

ज्ञान और विज्ञान, यन्त्र, व्यापार और शिक्षा पर,
घर बाहर औ' देश विदेश नीति पर, राजनीति पर,
भारत की देवी अब पूरा शासन माँग रही है।

—विद्यावती देवी "कोकिल"